

सामयिक प्रकाशन
३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

एक और वापसी

देवेन्द्र उपाध्याय



मूल्य : सोलह रुपये
प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
३५४३, जटवाड़ा दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२
संस्करण : प्रथम, १९८४

संपादन/प्रूफ० : एम० एस० राणा
कलापक्ष : हरिपाल त्यागी
मुद्रक : शान प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

EK AUR VAPASI (Short Stories) by Devendra Upadhyaya
Price : Rs. 16.00

एक लम्बी यात्रा की शुरुआत…

प्रत्येक यात्रा का आरम्भ एक छोटे से कदम से होता है। साहित्य-सृजन की लम्बी यात्रा भी ऐसे ही आरम्भ होती है—उन प्रयासों से जो जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों, घटनाओं, उद्वेगों को कला का रूप देते हुए इस लम्बे रास्ते पर अपने कदम बढाते है। उन्हें किसी नपी-तुली कसौटी पर आँकना कठिन होता है, उसकी जरूरत भी नही होती। इतना ही पर्याप्त है कि लिखने वाले की दृष्टि जीवनोन्मुख है।

जिन्दगी की धडकनों को महसूस करने, उसके भीतर पाये जाने वाले द्वन्द्व और विडम्बनाओं को देख पाने मे वह सक्षम है और इस बात में कि उसकी नजर मे साहित्य का महत्त्व क्या है। क्या सस्ता मनोरंजन जुटाना है या जीवन की यथार्थ, विश्वसनीय झांकियाँ प्रस्तुत करना, जो न केवल हमें सचेत करती है बल्कि हमारे अनुभव-क्षेत्र में भी बहुत कुछ जोडती हैं।

देवेन्द्र जी की कहानियों मे सहजता है, विविधता है और आज के जीवन की जटिलताओ को किन्ही पूर्वाग्रहो के परिप्रेक्ष्य मे न देखकर अथवा उनके लिए समाधान खोजने का प्रयास न करते हुए उन्हें यथावत् सामने रख देने की प्रवृत्ति है। इनकी कहानियों के कथानक जीवन से उठाये गये है। शहर, कस्बा और गाँव के जीवन मे से, कही-कही हम उस जीवन की झलक मात्र ही देख पाते है, पर वे अपने भीतर छिपे द्वन्द्वों और विषमताओं का चुभता-सा बोध हमें करा जाती हैं।

एक बार जो व्यक्ति कलम उठाये तो वह फिर उसे रख न दे, इस लम्बी यात्रा पर आगे बढता ही जाये, क्योंकि यह यात्रा भी, किसी अन्य यात्रा की भाँति निष्ठा, साधना और कभी शान्त न होने वाली जिज्ञासा की माँग करती है। इसी विश्वास के साथ देवेन्द्र उपाध्याय के इस कहानी-संग्रह का स्वागत करते हुए, मैं साहित्य मे उनके उज्ज्वल भविष्य की और महत्त्वपूर्ण योगदान की कामना करता हूँ।

—भीष्म साहनी

क्रम

अपने दायरे में कैद

●

सुबह नरेन जरा जल्दी उठ गया। बच्चे बिस्तर पर ही थे। नीता भी सोई हुई थी। नौकर हमेशा की तरह बेड-टी देकर अपने काम में लग गया।

बेड-टी लेने के बाद नरेन ने दाढ़ी बनाई और नहा-धोकर तैयार हो गया। नाश्ते के लिए उसने मना कर दिया। नौकर घर के काम में लगा हुआ था।

चलने से पहले वह बेड रूम में पहुँचा तो बच्चे अभी तक सोए पड़े थे। हाँ, नीता जग गई थी।

"नीतू, मैं जरा काम से जा रहा हूँ। कम्पनी के डायरेक्टर आए हैं, उनसे मिलना है। शाम तक लौटूंगा। लंच भी उधर ही है।"

"हर छुट्टी तुम्हारे डायरेक्टर बर्बाद कर देते हैं। आज पिक्चर देखने का प्रोग्राम था। रात को उधर ही किसी अच्छे रेस्तराँ में डिनर करते। तुमने सारा प्लान चौपट कर दिया। ठीक है। मैं अपना प्लान तो तुम्हारे लिए चौपट करने से रही।"

नरेन नीता की बात सुनकर चुपचाप बाहर निकल गया—वह माली-वाड़े के पुराने कटरे के भीतर स्कूटर को हाथ से घसीटता ले गया।

एक अँधेरी गली में पहुँचकर उसने स्कूटर खड़ा किया और एकदम सपाट जीने पर रस्सी से झूलता ऊपर जा पहुँचा। मकान में हवा और रोशनी के घुसने का रास्ता न था। पहले तो इस जीने पर वह आँखें मूँदकर चढ़-उतर जाता था। पिछले कई वर्षों से इस अँधेरे जीने में चढ़ने-उतरने का उसका अभ्यास छूट चुका था। बीस-बाईस वर्ष जिस मकान और गली में गुजरे अब वहीं वह चुपके से परायों की तरह घूमता था।

वह जब गली में घुसता तो सबसे बचने का प्रयास करता। अजीब

अपराध-भाव से ग्रस्त रहता था। जाने क्यों पड़ोसियों के सामने पड़ने से वह कतराने की कोशिश करता। पड़ोसी कभी कोई मिल भी जाते तो वह दुआ-सलाम करके जल्दी से खिसक जाता।

पड़ोसी चाचा तो बस यही पूछते, "नरेन, अकेले आए हो? बीवी-बच्चों को साथ नहीं लाए! बूढ़े माँ-बाप की कभी-कभी खोज-खबर ले लिया करो बेटा!"

नरेन उनसे कुछ कहने की बजाय सिर्फ सिर हिलाकर रह जाता। अपने माँ-बाप की वह बड़ी इज्जत करता था। आज भी पिता के सामने वह बहुत कम बोलता था। माँ से तो वह लाड़ कर लेता। माँ-बाप के सामने कभी वह नीता का ज़िक्र नहीं करता। वे भी उससे कभी ज्यादा नीता के बारे में नहीं पूछते थे।

नीता को पता था कि नरेन अपने माँ-बाप से मिलने जाता है। वह कई बार खीझती भी। यों उसके सामने वह स्वयं ही माँ-बाप की चर्चा करने से डरता था। पता नहीं कब तूफान खड़ा कर दे! उसे बिना बताए ही चुपचाप माँ से मिलने चला जाता। माँ उससे मिलकर ऐसा व्यवहार करती मानो आज भी नरेन छोटा हो। नीता के सामने न नरेन कुछ बोल पाता और न माँ-बाप ही। बस, मात्र औपचारिकता पूरी कर लेते थे।

नीता के साथ रहते नरेन को अपने और अपने माँ-बाप के बीच दूरी महसूस होती। इसलिए वह उसके साथ कभी माँ-बाप से मिलने नहीं आता। नीता खुद भी उनसे मिलने आने मे कतराती थी।

उसने नीता से प्रेम विवाह क्या किया सब कुछ गँवा दिया। चेहरे की हँसी भी गायब हो गई। माँ-बाप और भाई-बहन का वर्षों का साथ ही झटके में छूट गया। नीता के साथ महारानी बाग के शानदार फ्लैट मे रहकर उसे लगता कि किसी बियाबान जंगल मे रह रहा है। कभी-कभी उसे दहशत होने लगती। उसे लगता, इतनी बड़ी कोठी में जैसे नजरबन्द कर दिया गया हो।

जीना चढ़कर ऊपर पहुँचा। माँ भीतर रसोई में थीं और पिताजी कमरे मे बैठे अखबार पढने मे मशगूल थे। जतिन और मीना उसे कहीं

दिखाई नहीं दिए। उसने जाकर पिताजी के पाँव छुए और फिर सीधा रसोई मे पहुँच गया।

उसने पीछे जाकर माँ की आँखें बन्द कर ली। माँ ने चौककर पीछे देखा।

—कौन ?

आवाज बदलकर नरेन ने कहा, बताओ, कौन हूँ ?

—नरेन है। और कौन ?

उसने झट से हाथ हटा लिए और माँ के पैर छू लिए।

"नरेन बेटा, बहुत दिनो बाद फुर्सत मिली !"

नरेन मर्माहत हो उठा। फिर भी चुप रहा। उसके पास कोई उत्तर न था। माँ का लाड़ला बेटा रहा था। नीता से शादी के बाद सब कुछ भूल गया।

नीता से शादी उसके जीवन की बहुत बड़ी दुर्घटना थी, जिसे वह बहुत बाद मे समझ पाया। एक ऐसा जख्म उसके जीवन में हो गया, जो अब नासूर बन चुका था। माँ-बाप से हफ्ते-दस दिन में मिलने चला जाता। इस पर नीता हमेशा भड़क जाती। उसे यह कतई पसन्द न था कि नरेन अपने मामूली हैसियत वाले माँ-बाप से ज्यादा मिले-जुले। उसके और नरेन के बीच कई बार तकरार भी हो चुकी थी, इसी बात को लेकर।

नीता एक-दो बार नरेन के साथ आई, पर गाड़ी में घण्टाघर के पास पार्क करके बैठी रही। नरेन को जल्दी लौटने की ताकीद कर दी, जैसे नरेन माँ-बाप से नहीं, बल्कि किसी कैदखाने मे बन्द रिश्तेदार से मिलने जा रहा हो। तब से नरेन बिना नीता को बताए ही चला आता और निश्चिन्त भाव से दिन बिताता। उसे अब भी यही अपना घर लगता। महारानी बाग वाले फ्लैट में रहते हुए उसे लगता कि वह नीता के साथ उसका पेइंग-गेस्ट बनकर रह रहा है।

—क्या सोच रहा है नरेन ?

नरेन की तन्द्रा भंग हुई। उसने माँ की बात का कोई उत्तर नही दिया।

बहू और बच्चों को क्यों नही लाया रे ? महीनों से नही देखा।

—कुछ नही माँ। कोई खास बात नही। बच्चे अभी सोए थे। मैं जल्दी उठकर चला आया। तुम्हारे हाथ के पकौडे खाए अर्सा हो गया था। सोचा…

—चलो, पकौडों के बहाने याद तो आई माँ की। तू तो माँ-बाप के लिए भी पराया हो गया। हमारे जमाने मे तो बेटियाँ पराया धन हुआ करती थीं, पर अब तो बेटे पराये होने लगे। जमाने-जमाने की बात है बेटा। सब जमाने का दोष है।

माँ ने रैक से बेसन और आलू-प्याज निकाले और पकौडे तलने लगी। नरेन वहीं कुर्सी खिसकाकर बैठ गया।

बाहर कमरे मे बैठे पिताजी अखबार पढ़ तो रहे थे, पर नरेन के आने के बाद उनका मन अखबार पढने मे नही लगा। उनके सामने छोटे-से नरेन की तस्वीर नाच उठी। उन्होंने नरेन को लेकर क्या-क्या सपने नही देखे थे। सबसे बडा बेटा था उनका।

पत्नी कई बार कहती, "अपने नरेन के लिए चांद-सी बहू लाऊँगी।"

बेटे को पढ़ाया-लिखाया। कई जगह से रिश्ते आने लगे। माँ चाहती थी, जल्दी शादी कर दी जाए। पिता चाहते थे, कहीं काम से लग जाए तब शादी करें। दो-तीन जगह बात भी चल रही थी। नरेन इंजीनियरिंग कर रहा था। भविष्य अच्छा था।

इंजीनियरिंग का रिजल्ट आते ही नरेन एक अच्छी कम्पनी में लग गया। माता-पिता अब उसके लिए अच्छी लड़की की तलाश मे थे। दहेज का उन्हें कोई लोभ न था। चाहते थे किसी अच्छे परिवार की लडकी हो —सुसंस्कृत, सुशील। रिश्ते बहुत आ रहे थे। लोग आते-जाते पूछने लगते, "कब कर रहे हो नरेन की शादी ?"

पिता ने सोचा—जल्दी ही कहीं बात पक्की कर दी जाए तो अच्छा है। वह जब तक कोई फैसला करते, तब तक नरेन ने खुद ही अपना फैसला सुना दिया। उन पर वज्रपात हो गया। माँ के सारे सपने मिट्टी

में मिल गए। पिता ने ही उसे समझाया था, "उनकी खुशी मे ही हमारी खुशी है।"

नरेन आता तो घर में खुशी की लहर दौड जाती। पिता पहले से ही कम बोलते थे, पर अब नरेन कभी-कभार आता तो उससे बतिया लेते।

—क्यो, क्या घुट रही है माँ-बेटे में? कहते-कहते पिताजी भी रसोई मे पहुँच गए।

—अच्छा, तो बेटे की सेवा हो रही है। अरे भई, कभी हमें भी पूछ लिया कर। बेटे की सेवा के लिए तो अब बहू भी है। पकौड़े हमे नहीं मिलेंगे क्या?

नरेन पिताजी के व्यंग्य को समझ गया। उसने फीकी मुस्कान के साथ पिताजी की ओर देखा। माँ-बाप ने उसके बेमेल विवाह के खिलाफ कभी एक शब्द भी नही कहा था। उसने नीता से विवाह करना चाहा तो इजाजत दे दी और तब उन्होंने कहा था, "तुम अब बच्चे नही हो। स्वयं ही निर्णय लेने मे समर्थ हो। अपना अच्छा-बुरा अच्छी तरह सोच सकते हो। यह जिन्दगी का सवाल है, तुम्हें ही फैसला लेना है। पर, फैसला लेने से पहले यह सोच लेना कि कहीं जिन्दगी में फिर कभी पछताना न पड़े।"

नीता से विवाह के बाद वह अपने परिवार, रिश्तेदारो और दोस्तो से कटता चला गया। नीता बडे परिवार की थी। उसके पिता कभी अंग्रेजो की जी-हुजूरी करते थे और बदले में रायबहादुर का खिताब उन्हे मिल गया था। कई कोठियाँ थी उनकी। वक्त बदला। देश आज़ाद हुआ तो वे ऊँचे दायरे में अपनी पहुँच के बल पर 'पद्मश्री' का खिताब बटोरने में भी कामयाब हो गए। ऊँचे ओहदों तक उनकी पहुँच थी। इसका वह खासा फायदा भी उठाते थे। नीता उनकी आधा दर्जन सन्तानों में सबसे छोटी बेटी थी। सीनियर कैम्ब्रिज के बाद इग्लैण्ड से बिजनेस मैनेजमेण्ट की डिग्री लेकर लौटी थी। पैसे की उनके लिए कोई कमी नहीं थी।

नरेन जिस फर्म में इंजीनियर था, उसी मे वह एक्जीक्यूटिव थी। दोनों एक-दूसरे के करीब आ गए। नरेन उसके पारिवारिक दायरे से

अपरिचित था। उसे पहली ही नजर में नीता भा गई थी, पर पहल नीता ने ही की थी। वह उसके मोहजाल में फँसता चला गया।

उसने बाहर से ही नीता को देखा। महँगे रेस्तराँ-क्लबों मे उनका प्यार परवान चढ़ा और दोनो ने शादी का फैसला कर लिया। नीता के मम्मी-डैडी को कोई एतराज न था। एतराज तो नरेन के माँ-बाप को भी न था, पर उन्हे डर था कि वह जिस वातावरण मे पली-बढ़ी है, उसमे नरेश आसानी से घुल-मिल नही पाएगा। पर नरेन से कुछ कह नहीं पाए। कही वह यह न सोचे कि माँ-बाप नही चाहते कि वह नीता से शादी करे।

नरेन और नीता के दायरे अलग-अलग थे। दोनो ने शादी कर ली तो दोनों के परस्पर विरोधी वर्गों में टकराव होने लगा। नीता तो शादी के दो दिन बाद ही कटरे की जिन्दगी से उकता गई थी। खुले आकाश में उड़ने वाली चिड़िया पिंजरे में कैद हो गई थी।

—देखो नरेन! इस मुतहा दड़बे मे तो मेरी साँस घुटने लगी है। मैं तो एक साल भी यहाँ नही रह सकती। यहाँ रहना हमारी स्टेटस के खिलाफ है। महारानी बाग वाली कॉटेज में चले चलो। वहाँ कम से कम अपने स्तर से रह तो लेंगे।

नरेन को पहला झटका लगा था। उसके सामने एक ओर माँ-बाप थे, दूसरी ओर पत्नी। नीता की बात टालने की उसमें हिम्मत न थी। उसने अपना निर्णय अपने पिता को सुना दिया।

बड़ी गम्भीरता से बोले, "नरेन, जब शादी तुमने नीता से की है तो उसके कहे अनुसार चलो। नहीं चलोगे तो जिन्दगी कड़वाहट से भर जाएगी। तुम दोनों को जिन्दगी-भर साथ निभाना है। हमारा क्या है। पीले पत्ते हैं, पता नही कब गिर जाएँ। सीमा है—उसकी शादी हो जाए तो हमारी जिम्मेदारी पूरी हो जाए। रहा जतिन—वह भी अपने पैरों पर खड़ा हो गया है। नौकरी करे या क्लीनिक खोले—यह फैसला करना उसका काम है। हमसे जितना हो सका हमने किया।"

तीन-चार दिन के भीतर नरेन महारानी बाग की कॉटेज मे पहुँच

नीता तो दो दिन वाद ही अपने मम्मी-डैडी के पास चली गई थी। वहीं से महारानी बाग चली आई। उसमे नवविवाहिता-जैसी सुकुमारता न थी। वह कभी किसी का लिहाज करना भी नही जानती थी।

नीता ने जब नरेन को माँ-बाप से अलग होने के लिए कहा तो उसे बड़ा गुस्सा आया था। फिर भी उसने सब्र से काम लिया। गुस्सा पी लिया। नरेन के सामने बड़ी द्विविधा की स्थिति थी। एक ओर नवविवाहिता पत्नी, दूसरी ओर माँ-बाप थे—भाई-बहन थे। इनमे से एक का चुनाव करना था। माँ-बाप ने स्वयं ही रास्ता साफ कर दिया था। दूसरी बार नरेन मन ही मन अपने माँ-बाप के सामने नतमस्तक हो गया।

माँ-बाप ने उसकी खुशी की खातिर अपनी सारी इच्छाओं-आकांक्षाओं की होली जला दी थी। लेकिन उससे एक शब्द भी कभी नही कहा। वे नहीं चाहते थे कि नरेन के मन मे कभी भी यह विचार आए कि उसके माँ-बाप ने उसके साथ ज्यादती की है। वे अपने स्वार्थ के लिए नरेन के सपनों का गला नही घोंटना चाहते थे।

नरेन अपने माँ-बाप के आगे पराजित हो गया। उसकी इच्छाओं के आगे कोई अंकुश न लगाकर उन्होंने अपने सारे अरमान समाप्त कर दिए थे। कभी भी उससे कोई शिकायत नही की थी।

नरेन को लगता—नीता से शादी करके वह जीती बाजी हार गया है। नीता ने ही बाजी जीती। अब तो बस वह शतरंज का मोहरा बनकर रह गया है। नीता से उसका मात्र इतना ही नाता रह गया था कि रात को उसके साथ रहता। छुट्टी के दिन भी किसी न किसी बहाने घर से निकल जाता। नीता के साथ रहकर अब उसे घुटन-सी महसूस होती। बच्चे भी उसकी अपेक्षा रीता को ही ज्यादा चाहते। न जाने क्यो उसे कभी-कभी लगता कि नीता उसके जीवन मे न आती तो उसका भी एक दायरा होता। उस दायरे मे माँ-बाप होते, पत्नी होती, बच्चे होते, मित्र होते।

नरेन जिस कोठी में नीता के साथ रह रहा था, वह नीता के ही नाम थी। वहाँ सारी सुख-सुविधाएँ आने से पहले ही मौजूद थीं। वहाँ पहुँचने के

बाद तो नीता ने साफ-साफ कह दिया—"नरेन, हमें अपनी हैसियत का ध्यान रखना है। तुम्हारे माँ-बाप के पास मैं जा नहीं सकती, क्योंकि उनका दर्जा बहुत छोटा है। वे हमारे समाज में फिट नहीं हो सकते। उनसे ज्यादा अच्छी तरह तो हमारे नौकर रहते हैं।"

—लेकिन, नीतू डार्लिंग, मेरे तो माँ-बाप है वे। उनके प्रति मेरा भी तो कुछ कर्त्तव्य है। इस बुढ़ापे में मैं उन्हें कैसे छोड़ सकता हूँ। अपनी सारी जमा-पूँजी वे हम भाई-बहनों को पढ़ाने में लगा चुके है। जब मेरी जिम्मेदारी उनके प्रति होनी चाहिए थी, तब मैं उन्हें छोड़कर चला आया।

— ठीक है। तुम अपने माँ-बाप से मिल सकते हो। पर मैं नहीं जाऊँगी कभी। तुम मुझे मजबूर भी नहीं कर सकते। मुझे उस अँधेरी गली और घर में जाते बड़ी घिन लगती है। वहाँ का एन्वायरेनमेंट ही कितना खराब है। कोई भला आदमी वहाँ नहीं रह सकता।

नरेन कैसे कहता कि नीता के माँ-बाप के समाज में वह भी तो अनुपयुक्त था। यों नीता का अपने मम्मी-डैडी से भी मात्र औपचारिक ही सम्बन्ध था। कभी-कभार मिलने चली जाती। न चाहते हुए भी नरेन को उसके साथ जाना पड़ता।

नरेन के माँ-बाप समाज के उस वर्ग के थे, जिसमें मानवीय सम्वेदनाएँ मरी नहीं थी। पर नीता का जो माहौल था, उसमें सम्बन्ध पैसे पर टिके थे। वहाँ मानवीय रिश्तों के लिए कोई जगह न थी। नरेन खुद को उस साँचे में ढाल नहीं पाया। लगता—जैसे उसका कुछ खो गया है। उस घुटन-भरे माहौल से घबराकर वह अपने माँ-बाप से मिलने चला आता। हँसी-खुशी में कुछ समय कट जाता।

नरेन सोचता जा रहा था। उसकी तंद्रा टूटी तो वह उठकर बाहर ड्राइंगरूम में आ गया। तब तक जतिन और सोमा भी लौट आए थे। "हाय भैया!" कहकर दोनों उसके कन्धों पर झूल गए। नरेन के सामने बीते वर्ष आकर खड़े हो गए सहसा।

—आज तो हम भैया के साथ खाना खाएँगे।

—घर में खाना है या कहीं बाहर? बाहर चलना है तो झटपट तैयार हो लो। अपने पास बहुत वक्त है।

—नहीं, सब घर में ही खाएँगे। कितने दिन हो गए हैं इकट्ठा खाना खाए!

शाम को नरेन उदास मन से लौट आया। जैसे किसी पिंजरे में कैद होने के लिए आया हो। नीता बच्चों को साथ लेकर कहीं गई थी। उसे थोड़ी-सी राहत मिली।

नौकर ने बताया—"मेम साहब गाडी लेकर गई है। कहती थी देर से लौटेंगी।"

वह तनिक आश्वस्त होकर बिस्तर पर पसर गया उसने काफी मँगाई और नौकर को रात का खाना बनाने के लिए कह दिया। वह अब कहीं जाना नहीं चाहता था। जो सुखद क्षणों की अनुभूतियाँ उसके साथ थीं, उन्हें सँजोकर रखना चाहता था।

नीता से शादी के बाद दो साल में ही दो बच्चे हो गए थे। वह जल्दी इस काम से मुक्त होना चाहती थी। मुक्त समाज में जाने के लिए वह पूरी तरह मुक्त हो गई थी। पर नरेन उस समाज में जाने से कतराता था। उसके संस्कार नीता के साथ चिपके हुए थे। नीता का रात देर तक बारों में बैठकर पेग पर पेग चढाना और फिर बहकना उसे अच्छा नहीं लगता था। पर उससे कुछ कहने की हिम्मत भी नहीं थी उसकी। नशे में धुत वह आधी-आधी रात को लौटती।

एक बार नीता से उसने कहा तो वह बिफर उठी थी—"तुम अगर गँवार ही बने रहना चाहते हो तो बने रहो, पर मुझे तुम रोक नहीं सकते। मैं तुम्हारी खरीदी बाँदी नहीं हूँ।"

इसके बाद से उसने कुछ भी कहना छोड़ दिया था। पहले वह काफी-हाउस की रौनक होता था—अपने को भुलाने के लिए, किन्तु [illegible] काफी-हाउस जाना भी छूट चुका था। अब तो वह परकटे परिन्दे [illegible] एक ही निश्चित दायरे से ज्यादा उड़ नहीं सकता था—

रात खाना खाकर वह लेट गया। नीता और [illegible] आए। तभी अचानक उसके सीने में दर्द उठा। वह [illegible]

[illegible]

लगा। नीता उसे नर्सिंग-होम में दाखिल कराकर लौट गई। वहाँ रहना उसे असुविधाजनक लगा था।

सुबह उसने नीम बेहोशी में अपने भाई को फोन करने के लिए नर्स से कह दिया। कुछ ही देर में बदहवास से माँ-बाप के साथ जतिन और सीमा वहाँ पहुँच गए। पर नीता का कोई पता न था। उसने आया को खबर लेने भेज दिया था—इस सूचना के साथ कि मौका मिला तो शाम को आऊँगा।

पर नीता को शाम को भी मौका नहीं मिला। माँ-बाप और सीमा काफी देर बाद गए। जतिन वहीं रुका रहा। पर वह अपने ही समाज में मस्त थी—अपने ही दायरे में क़ैद! उसे इतनी भी फ़ुर्सत न थी कि नरेन को आकर देख जाती! पर नरेन···

एक टुकड़ा सुख

●

जवानी के दिनों में वह अक्सर सपने देखती थी। किसी गबरू जवान को, और उसकी सारी जवानी सपने देखते-देखते बीत गई। तभी जाने कहाँ से उम्र के आखिरी मोड़ पर जतिन मिल गया। उसे देखते ही वह भूल गई कि उसकी उम्र ढल रही है और अब उसमें किसी को खींचने के लिए कुछ भी नहीं रह गया।

एक पिछड़े इलाके में उसे स्कूल में नौकरी मिल गई थी। वह माँ-बाप को छोड़कर निकल आई। माँ-बाप ने उसे कितना ही समझाना चाहा पर उस पर कोई असर नहीं हुआ। छोटी बहन का माँ-बाप ने विवाह कर दिया था और वह जवानी में कदम रखने के बाद से ही सपने देखती आ रही थी। जब माँ-बाप ने उसके लिए लड़का ढूंढने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई तो उसे अपने ही माँ-बाप से घृणा होने लगी। वह सोचती, कब उससे पीछा छूटे। नौकरी मिली तो उसने एक झटके से जाने का फैसला कर लिया।

उसकी समझ में न आता कि साँवली होने में उसका दोष क्या है। ऊँची जाति के दम्भ को लेकर परिवार वाले अपने से नीची जाति में उसकी शादी करने को तैयार नहीं थे। रिश्ते भी कई आए थे। परिवार वालों ने उससे पूछे बिना सबको इन्कार कर दिया। बड़ी जाति का कोई तैयार ही नहीं होता। यों वह ज्यादा पढ़ी-लिखी भी नहीं थी, सिर्फ मैट्रिक पास थी।

घर छोड़ते समय उसे दुख नहीं हुआ। जिन परिवार वालों को उसकी चिन्ता नहीं थी उनके लिए वह क्यों परेशान होती। पहली बार घर छोड़ते वह खुशी से भर उठी, जैसे ससुराल जा रही हो।

नयी जगह, नयी नौकरी। वहाँ पहुँचते ही वह सब कुछ भूल गई। अपने व्यवहार से उसने गाँव वालों का मन जीत लिया। वह गाँव वालों के लिए अपनी होकर रह गई।

गाँव वाले इस उम्र तक ब्याह न होने पर उससे ढेरों सवाल करते। शुरू में वह टाल जाती। कहाँ-कहाँ तक औरतों को समझाती। एकान्त के क्षणों में उसे यही सवाल कचोटने लगते। गाँव की उससे कई बरस छोटी लड़कियाँ ससुराल से लौटकर आती तो वह छेड़-छेड़कर उनसे ससुराल के किस्से पूछती। उनके जाने के बाद वह दर्पण के सामने खड़ी होकर अपने सफेद होते जा रहे बालों को देखती, अपने चेहरे पर उभरती झाइयों को देखती और फिर सिसक उठती।

जतिन कब उसके करीब आया और कब उसका हो गया, उसे कुछ भी याद नहीं। जाने कहाँ का था वह—उसने कभी उससे कुछ नहीं पूछा।

जतिन भी कहीं बाहर से आया था सरकारी नौकरी करने। सुमित्रा जिस गाँव में रह रही थी वहाँ हर तीसरे-चौथे दिन उसका जाना होता। सुमित्रा मन-प्राण से उसकी हो गई। पहली बार उसने किसी को अपने से ज्यादा चाहा था, पर जतिन तक कैसे पहुँचे। मुलाकात होती। दुआ-सलाम से आगे बात नहीं हो पाती। जतिन यों ही कभी-कभार उसका हाल-चाल पूछ लेता।

जतिन का आना-जाना कुछ ज्यादा ही बढ़ गया। वह तब आता जब वह स्कूल से लौट आई होती। कभी दोपहर में, कभी शाम को।

एक दिन जतिन उसके कमरे में बैठा था। वह खाना बना रही थी। एक ही कमरा। उसी में किचन भी थी। स्टोव पर सब्जी रखकर वह जतिन के पास आकर बैठ गई। अचानक उसे जतिन ने अपनी बाँहों में भींच लिया और ढेर सारे चुम्बन जड़ दिए। सुमित्रा इस सारी स्थिति के लिए तैयार नहीं थी, पर जीवन में पहली बार किसी के स्पर्श ने उसे पुलकित कर दिया। वह बेजान होकर जतिन की बाँहों में झूल गई।

जतिन ने कब उसे पूरी तरह अपने आगोश में ले लिया, उसे पता ही नहीं चला। एक बेहोशी जैसी उस पर छाती चली जा रही थी। उसने आँखें खोलीं तो जतिन के साथ खुद को सटा हुआ पाया। बरसों की अतृप्ति

की जिस प्यास के लिए वह भटक रही थी उसे जतिन ने बुझा दिया। उसने अपने शरीर पर निगाह डाली और लाज से आँखें बन्द कर ली।

उधर स्टोव में सब्जी जलने लगी। कसमसाने लगी। जतिन ने झटके से उठकर स्टोव बन्द कर दिया। एक बार फिर उस पर नशा छा गया। जतिन ने उसे पूरी तरह ढक लिया था। उसकी चेतना लौटी तो वह उठने की कोशिश करने लगी। जतिन ने उसे ढीला छोड़ दिया। बिना जतिन की ओर देखे उसने अपने कपड़े पहने और स्टोव जलाने लगी। जतिन वैसे ही पड़ा रहा।

उसने खाना तैयार कर जतिन को जगाया। वह बोली कुछ नहीं। जतिन भी चुप था। दोनों नीची निगाहें किए चुपचाप खाना खाते रहे।

जाते समय जतिन ने कहा, "सुमिता, अनजाने में जो कुछ हो गया, उसके लिए माफ कर देना।"

वह कुछ भी तो नहीं बोल पाई। कुछ भी नहीं।

जतिन आता और वह समर्पित हो जाती।

एक दिन उसने कह ही दिया, "जतिन, आखिर कब तक इस तरह चलता रहेगा। मैं तुम्हारा इन्तजार करने की अधिकारिणी बनना चाहती हूँ।"

"सुमिता, जल्दी ही वह दिन भी आएगा। तुम मुझ पर विश्वास करो।"

जतिन-सुमिता के बारे भी अफवाहें उड़ने लगी। सामने कोई कुछ न कहता पर पीठ पीछे पचासों तरह की बातें होतीं।

एक दिन जतिन आते ही बोला, "मिठाई खिलाओ सुमिता।"

वह भौचक्की देखती रही। आखिर बात क्या है, उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

—मेरा ट्रांसफर हो गया है।

सुमिता जैसे आसमान से गिर गई। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

जतिन मुस्कुराता रहा। उसने जेब से कागज निकालकर सुमिता के हाथों में थमा दिया—यह तो सुमिता के ट्रांसफर का आर्डर था।

जतिन ने काफी ले-देकर अपना और सुमिता का एक ही शहर में ट्रांसफर करा लिया था। सुमिता खुशी से बच्ची की तरह जतिन की बाँहों में झूल गई।

जतिन और सुमिता दूर शहर मे चले आए। दोनों ने सबसे पहले एक मंदिर में शादी कर ली। जतिन के कहने पर सुमिता ने अपनी नौकरी भी छोड़ दी। अब वह जतिन की थी और जतिन उसका।

जतिन टूर पर ही ज्यादा रहता। सुमिता के लिए एक-एक क्षण भारी हो उठता। तीन-चार बरस बीत गए। सुमिता एक बच्ची की माँ बन गई। सारी खुशियाँ उसकी बाँहों में थीं।

शाम का वक्त था। सुमिता बच्ची को खिला रही थी। तभी अचानक दो व्यक्ति सामने आ गए। वह उन अजनबियों को देखकर हकबका उठी।

—जतिन का घर यही है क्या ?

उसने आँचल सँभालते हुए कहा, "हाँ।"

उनमें से एक ने दरवाजे के बाहर आवाज दी, "अंजु, भीतर आ जाओ।"

तभी एक युवती भीतर आई। वह किसी भले घर की लग रही थी पर उसके चेहरे पर घने विषाद की छाया थी।

—क्या काम है ?

—यह जतिन की बीवी है। एक ने उस युवती की ओर इशारा किया।

सुमिता जैसे आकाश से गिर पड़ी हो। उसके मुँह से आवाज नहीं निकली। उसके सुखी जीवन मे आग लग गई थी।

उसने साहस कर कहा, "इतना बड़ा झूठ बोलते आप लोगों को शर्म नहीं आती। जतिन की बीवी मैं हूँ—यह उनकी बच्ची है।"

"ठीक है—झूठ-सच का फैसला तो खुद जतिन करेगा। जिसने अंजु के साथ सात फेरे लिए है। तुम क्या फैसला करोगी। तुमने तो सीधे-सादे जतिन को फँसा लिया है। यह भी नहीं देखा कि उसकी पहले से बीवी है। किसी का बसा-बसाया घर उजाड़ते तुम्हे ही शर्म आनी चाहिए।"

—जतिन ने मुझे कभी कुछ नहीं बताया।

—जतिन कहाँ है ?

—वह हफ्ते-भर के लिए टूर पर गए हैं।"

—जतिन को बता देना। हम हफ्ते-भर बाद फिर आएँगे और तब फैसला करके ही जाएँगे।

वे तीनों चले गए। सुमिता का सिर घूमने लगा। बनी-बनाई गृहस्थी उजड़ गई थी। जिस जतिन पर उसे विश्वास था उसी ने इतनी बडी सजा दे दी। नौकरी तो कब की छूट चुकी थी—उसने स्वयं छोड दी। अब उसके पास क्या बचा था। बच्ची का बोझ लादे वह कहाँ भटकेगी। माँ-बाप के लिए तो वह कब की मर चुकी थी। अपना कहने के लिए कोई नही रहा।

सुमिता के सामने बड़ी विकट स्थिति थी। जतिन ने अब तक जो सुख उसे दिया उसे सच माने या अभी-अभी जो घटा उसे? उसने महसूस किया कि जैसे किसी ने उसके मुँह का कोर छीन लिया हो और घर मे कुछ भी न बचा हो।

एक पल वह सोचती कि बच्ची को लेकर कहीं दूर निकल जाय और दूसरे पल सोचती कि जतिन से फैसला करके ही रहेगी। आखिर उसने तै कर लिया कि वह जतिन के आने के बाद पूछेगी कि जो कुछ उसने देखा-सुना है वह सिर्फ एक डरावना सपना था या एक कटु सत्य?

हफ्ते-भर बाद जतिन जब लौटा तो सुमिता ने उससे अंजु के बारे मे पूछा। अंजु का नाम सुनते ही जतिन का चेहरा पथरीला हो गया। सुमिता के बार-बार पूछने पर भी जतिन ने कोई जवाब नही दिया। सुमिता समझ गयी कि अंजु सचमुच जतिन की पहली बीवी है और जतिन ने उससे न केवल विश्वासघात किया है बल्कि उसका एक टुकड़ा सुख भी उससे छीन लिया है।

दुलारी का दूल्हा

●

मौनी बाबा किसी से ज्यादा घोलता नही था। उसके पास आने वालों में ज्यादातर ऐसे लोग होते जो दम लगाने आते थे। दम लगाते और लौट जाते।

दो पहाड़ी नदियों के संगम पर मन्दिर बसा था। मन्दिर उजाड़ ही ज्यादा था। एक जमाने में यह मन्दिर आजादी की लड़ाई लड़ने वालो का केन्द्र था। तब जो बाबा जी थे वे इलाके के लोगों के प्रेरणास्रोत थे। वे इलाके के लोगो को अंग्रेजो के खिलाफ उकसाते और जो सक्रिय लड़ाई में थे उनके परिवार वालो की मदद करते। उन बाबा जी की देह छूटने के बाद फिर कभी इतनी रौनक मन्दिर में नही देखी गई। बड़े-बूढे भी अक्सर बताते। कभी-कभी कोई बाबा आता। महीना-दो महीना या साल-दो साल टिककर लौट जाता।

मौनी बाबा आया तो अर्से से वीरान पड़े मन्दिर मे रौनक लौट आई। उजाड़ मन्दिर मे फिर से जीवन लौट आया।

मौनी बाबा की उमर भी कोई ज्यादा न थी, पैंतीस-चालीस के बीच होगी। लोग जब उसका पता-ठिकाना पूछते तो वह कहता, जोगी और साँप का कोई घर नहीं होता। जोगी और नदी को कोई बाँध नही रोक सकता।

बाबा कहाँ से आया यह कोई नही जानता। कहने वाले कहते—आठ-दस बरस से इसी इलाके मे घूम रहा है। पहले दो मन्दिरों मे टिका, पर लोगो ने इसके रंग-ढंग अच्छे नहीं देखे सो चलता कर दिया। गाँव के लोग मन्दिर मे ऐसे बाबा को रहने क्यों देते भला, जो गाँव की बहू-बेटियों को बुरी निगाह से देखता था।

अब वह चार-पाँच बरस से धूनी रमाये इस मन्दिर में जमा था। मील-भर से पहले कोई गाँव भी नहीं था। वह मन्दिर में क्या करता है इससे किसी को कोई मतलब नहीं था।

बाबा का नियम था कि शाम छह बजे के बाद किसी को मन्दिर में टिकने नहीं देता। सवेरे-सवेरे कुछ निठल्ले आ जाते दम लगाने के चक्कर में, तो उन्हें भी भगा देता। दोपहरी में किसी के आने-जाने पर कोई रोक-टोक नहीं थी। बाबा ज्यादा किसी से नहीं बोलता, बस चुपचाप पड़ा रहता। लोगों ने उसका नाम मौनी बाबा रख दिया।

घाटियों के बीच नदियों से घिरा मन्दिर। बरसात में नदियों का भयंकर गर्जन और चारों ओर फैला कोहरा वातावरण को और भयकर बना देता। मन्दिर के चढ़ावे से मौनी बाबा का खर्चा निकल जाता। हफ्ते-दो हफ्ते में कभी-कभार बाजार की तरफ हो आता—चार-पाँच मील दूर और खरीद-फरोख्त कर लाता।

दुलारी रात को अक्सर अपनी जवान होती जा रही लड़की को अकेले छोड़कर कहीं चली जाती है, यह किसी को पता नहीं था। वह आधी रात के बाद भैंस दुहकर एक लोटा दूध लेकर सीधे मौनी बाबा के पास पहुँचती। उसके बाद सुबह वापस लौटती। डेढ़-दो मील की दूरी पर मन्दिर था। सुबह लौटते समय लोग समझते, दिशा-मैदान से आ रही होगी। हाथ में लोटा भी होता। शक की गुंजाइश नहीं थी।

दुलारी रामप्रसाद को नहीं भूल पायी थी जो मौनी बाबा बनकर उसके लिए वीराने में जोगी बना पड़ा था। उसकी ही खातिर रामप्रसाद अपना सब कुछ छोड़कर उसके पीछे चला आया था। उमर दुलारी की तीस-बत्तीस से ज्यादा न थी। बारह-तेरह बरस की छोकरी थी उसकी।

पति परदेश में नौकरी करता। सोलह-सत्तरह बरस की रही होगी जब शादी हुई थी। पति शादी के हफ्ते-भर बाद ही नौकरी पर चला गया था। पति का सुख उसे एक रात ही मिल पाया। जवानी आखिर कब तक इन्तजार करती। दो साल तक पति नहीं लौटा तो पड़ोस के ही रतन से आँख लड़ गई। पति ने जो कुछ उसे नहीं दिया रतन ने दे दिया। दो-तीन महीने निकल गए। उसे घबराहट हुई। आखिर रतन ही उसे उसके पति

के पास छोड़ आया। अपने पति को उसने सात महीने बीतते न बीतते एक लड़की का बाप बना दिया।

पति सवेरे काम पर निकल जाता और रात को लौटता। खाना खाकर सो जाता। पति-सुख के लिए दुलारी तरसती रह गई। दुलारी को वह चाहता कम नहीं था। पर चाहने भर से क्या होता है।

दिन-भर दुलारी अकेले रहती। एक दिन छत पर कपड़े सुखाते हुए दुलारी की नजरें रामप्रसाद पर अटक गईं। वह उसे देखती ही रह गई। बस फिर क्या था। पति काम पर चला जाता और रामप्रसाद दुलारी के पास पहुँच जाता।

उसके पति को एक दिन इसकी भनक पड़ गई। उसने कहा कुछ नहीं। वह ताक में रहने लगा और एक दिन दोनों को रंगे हाथ पकड़ लिया।

हफ्ते-भर बाद दुलारी को उसका पति गाँव छोड़ गया। दुलारी को अकेलापन काट खाने को दौड़ता। जेठ-जेठानी थे जो अलग रहते थे। उनकी कोई औलाद न थी। दोनों भाइयों के परिवार में दुलारी की ही लड़की थी। रतन भी अब नौकरी पर चला गया था।

दुलारी की कद-काठी को देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि उसकी बेटी भी होगी। दुलारी और उसकी बेटी सगी बहनें लगती। वह तो बीस-बाईस से ज्यादा की नहीं लगती थी।

एक दिन एक बाबा आकर उसकी दहलीज पर बैठ गया। उसने नजरें झुकाकर उसे भिक्षा देनी चाही पर बाबा ने मना कर दिया।

"फिर क्या चाहिए बाबा?" अनमने मन से पूछा उसने।

—जिस माई के लिए जोग लिया है वही नहीं पहचान रही है।

दुलारी ने घूरकर देखा। हो, झट पहचान गई—और यह उसका रामप्रसाद है।

रामप्रसाद पास के मन्दिर में बस गया। दुलारी देर-सबेर जाकर मिल आती। लोगों को बाबा पर कुछ संदेह हो गया तो भगा दिया। फिर वह दूसरे मन्दिर में रहा और सात-आठ महीने में वहाँ से भी चलता कर दिया गया।

उसके बाद बाबा बना रामप्रसाद घाटी के मन्दिर में आ गया। दुलारी के मन-प्राण तो उसी मे बस चुके थे।

कई बरस बाद दुलारी का पति नौकरी से छुट्टी पर आया। पति के आने के बाद भी उसके रंग-ढग नही बदले। पति को सन्देह हो गया। उसने दो-तीन रात उसका पीछा किया। असलियत समझते उसे देर नहीं लगी। वह खून का घूँट पीकर रह गया।

आखिर उससे न रहा गया तो उसने दुलारी को जाते हुए पकड़ लिया—रांड, तेरे लिए मैंने क्या कमी कर रखी है जो तू अपने यार के पास जाती है। वह भड़वा मेरी नाक कटाने यहाँ तक आ गया।

—बड़े मर्द बनते हो। तुम समझते हो कि मुझे खाने-पहनने के अलावा और कुछ नही चाहिए। मेरी जवानी बर्बाद करके अब मुझे रोकने वाले तुम कौन होते हो! मैं जिन्दगी-भर तुम्हारे नाम की माला ही जपती रहूँगी क्या?

—तेरी खातिर मैंने दूसरी शादी भी नही की।

—मुझे बहुत सुख दे दिया है न तुमने, जो दूसरी को भी देते।

—तू आखिर चाहती क्या है! मैं आज फैसला करके ही रहूँगा। तू या तो मेरे साथ रह या फिर उस भड़वे के साथ चली जा।

—तुम मेरी बोटी-बोटी कटवा दो तो भी मैं तुम्हारे नाम की आरती उतारने से रही।

इसके बाद उसने अपने सारे जेवर उसके हवाले कर दिए और एक दराँती हाथ मे लेकर चल दी अपने मौनी बाबा के पास।

गाँव मे हंगामा हो गया। गाँव की बदनामी का डर। आस-पास के लोग भी पहुँच गये। आँधी से भी तेजी से खबर उड गई—दुलारी मौनी बाबा के साथ रहने चली गई है।

सब मन्दिर में पहुँच गए। देखा, दुलारी और बाबा मन्दिर के आँगन मे पीपल के पेड के नीचे आमने-सामने बैठे हैं।

सब चिल्लाये, "मारो साले को। इस कुतिया को भी डडे जमाओ।" पर दुलारी के पति ने सबको रोक दिया। वह उन दोनों के पास पहुँचा और बाबा से बोला, "अपनी खैर चाहता है तो इसको लेकर अभी यहाँ से

दफा हो जा। अगर नहीं गया तो इसी पेड़ के नीचे गाड़ देंगे।"

बाबा ने कहा, "दुलारी के कारण मैंने घर-बार छोड़ा—संन्यास लिया, और आज संन्यास छोड़कर यहाँ से चला जाऊँगा।

वहाँ एकत्र लोगों की घृणा का जवाब हिकारत से देते हुए दोनो मंदिर से बाहर निकल गए। दुलारी ने इस बीच गेरुवे कपड़े पहन लिये थे। अपने पुराने कपड़े पति की ओर फेंकते हुए उसने कहा, "तुम्हारा केंचुल तुम्हारे हवाले कर रही हूँ।"

अपनों का दुख

●

ऐसा गाँव में आज तक किसी ने देखा-सुना न था। किशन और बिशन के बीच बँटवारा अपने ही तरीके का था। उनकी माँ बिशन के साथ चली गई। किशन ने माँ से बोलचाल भी बन्द कर दी।

ऐसा नहीं था कि किशन इसलिए अपनी माँ से नाराज था कि वह उसके छोटे भाई बिशन के साथ चली गई थी। किशन ने अपने बाप के मरने के बाद से ही अपनी माँ को जलील करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। वह माँ का लिहाज भी भूल गया। जो किशन माँ से पूछे बिना कौर तक नहीं तोड़ता था उसने ही माँ को रण्डी तक की गाली दे डाली।

उसकी माँ का सिर्फ यह कसूर था कि वह किशन की माँ थी। बारह से ज्यादा औलादें हुई थीं उसकी, पर बचे आखिरी दो किशन-बिशन ही। सारी जिन्दगी उसकी घोर कष्ट में बीती। दोनों बेटे बड़े हो रहे थे तभी से उसने सपने देखने शुरू कर दिए। अब उसे अपने पिछले ही दिन भले लग रहे थे—कम से कम पति का साया तो था। अब वे भी नहीं रहे।

बाप के मरने के कुछ ही दिनों बाद किशन जिद् पर अड़ गया और उसने फैसला कर लिया कि वह बिशन को अलग करेगा। बिशन की बारात लौटने के दूसरे ही दिन उसके बाप ने दम तोड़ दिया था। किशन ने सारा दोष बिशन की नवविवाहिता पत्नी के मत्थे मढ़ दिया। वह बिशन की बहू को अपशकुनी समझने लगा।

नयी ब्याहता दुल्हन आते ही शोक में डूब गई। किशन के गाली-गलौज ने उसके चेहरे की मुस्कान भी छीन ली। माँ ने जब किशन को डाँटा तो वह उसके बाद से माँ के पीछे पड़ गया। माँ के सिर पर पहले ही इतने बड़े दुख का पहाड़ टूट पड़ा था। किशन के गाली-गलौज ने उसकी

नींद ही हर ली। वह किसी से अपना दुखड़ा नहीं कह पाती। किसी के पास जाकर बैठती भी कैसे। किशन अगर किसी के साथ बैठे देख लेता तो उससे ही झगड़ने लगता।

अपनी माँ से कोरे कागजों पर अँगूठा लगवाकर बाप का इधर-उधर जमा सारा पैसा उसने पहले ही हड़प लिया। इसकी किसी को कानोंकान खबर भी नहीं हुई। बिशन जो हमेशा बड़े भाई की इज्जत करता था; उसे जब यह सब पता लगा तो बड़ी ठेस पहुँची। उसने इस मामले में कुछ भी न कहने की कसम खा ली।

इसके बाद किशन ने बिशन और अपनी माँ को अलग हो जाने का अल्टीमेटम दे दिया। गाँव के भले आदमियों ने समझाना चाहा—बाप को मरे साल-भर तो हो जाने दो। उस पर किसी के कहे का कोई असर नहीं हुआ। तब गाँवों वालों ने भी उनके मामले में न पड़ने का फैसला कर लिया। किशन खुद-मुख्त्यार था—उसने खुद जो पहले ही तय कर लिया था वही किया। खुद मकान और अच्छे-अच्छे बर्तन रख लिये—गोशाला और पुराने टूटे-फूटे बर्तन तथा दूसरा सामान बिशन को सौंप दिया।

बिशन ने कोई अड़ंगा नहीं डाला। जो भी मिला चुपचाप ले लिया। उसने सोच लिया—जिन्दगी बनी रही तो सब कुछ जुट जायेगा। माँ गोशाला में रहने के लिए बिशन के साथ चली गई। किशन के ब्याह के बाद से ही उसने गोशाला में जाना छोड़ दिया था और अब उसे गोशाला ही रहने को मिल गई थी। वक्त कितनी जल्दी बदल जाता है।

उसे वह दिन भला नहीं है। किशन की घरवाली तबीयत खराब होने की वजह से घर पर ही रह गई थी। वह गाँव की दूसरी औरतों के साथ खेतों में चली गई। वह सब खेतों के किनारे बैठ गई। तभी किशन किसी दूसरे गाँव से लौटता उधर से ही आ निकला। किशन को देखते ही वह सकपका गई। उसने छूटते ही दूसरी औरतों से कहा—"मेरी माँ को बहकाने की जरूरत नहीं है। बहकाने की कोशिश की तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा।"

वह शर्म से जैसे गड़ गई। दूसरी औरतें खिसिया गईं। किसी के कुछ कहने से पहले ही किशन दनदनाता वहाँ से चला गया।

वह जब इस गाँव में ब्याहकर आई थी तो बारह-तेरह बरस की रही होगी। पति दस बरस बड़े थे। घर मे तीसरा प्राणी भी कोई नही। इसी गौशाला मे रहते थे। तब से वह मैके नही गई थी और मैके वालों ने भी तब से उसकी कोई खोज-खबर नही ली। चालीस-पैंतालीस बरस हो गए थे। इस गाँव से बाहर उसने आज तक नही देखा। मोटर कैसी होती है—यह भी उसे पता नही। बच्ची ही तो थी वह। पति ने उसे जरा भी अकेलापन महसूस नही होने दिया। फिर भी वह अकेली थी। दिन-भर खेतों मे कट जाता पर रात काटने को दौड़ती। पति ने बड़े ही जतन से उसे रखा किसी चीज की कमी नहीं होने दी।

पति गरीब थे पर मेहनत-मजदूरी से कभी घबराए नही। जाड़ों में वे भाबर चले जाते। किसी न किसी ठेकेदार के यहाँ काम मिल जाता। होते-होते ठेकेदारो के मुंशी बन गए। पुराना एक मंजिला मकान गौशाला बना दिया और रहने के लिए नया मकान बना लिया। गाँव मे स्कूल होते हुए भी किशन-बिशन को शहर में पढ़ने भेजा। लायक बन जाएँ। यही ख्वाहिश थी उनकी। पति और बच्चों के होते हुए भी वह अकेली दिन काटती रही। बच्चो की सारी फरमाइशें पूरी होती—पढ़ाई मे कमजोर न हों, ट्यूशन भी लगा ली। पति कोल्हू के बैल की तरह घिसटते रहे जिन्दगी-भर।

यह तो उसी को पता था कि कितने अरमान लेकर बच्चों को पढ़ाया था पति ने। जगल की नौकरी। जाड़ों में भी एक कम्बल में गुजारा किया। बिछौने के नाम पर फूस बिछाते रहे। अपनी शान-शौकत करते तो बच्चे उसी अँधेरे सीलन-भरे कमरे से बाहर नही निकल पाते। किशन तो जैसे उन दिनों को भूल गया। शहर की चकाचौंध ने जैसे उसे अन्धा ही कर दिया। वह यह भी भूल गया कि माँ-बाप ने उसे किस मुसीबत से पढ़ाया।

किशन-बिशन अलग हो गए। बात यही तक नही रही। किशन ने बाप पर दो हजार का कर्जा दिखा दिया और कहा, "जब तक बिशन एक हजार नही देगा तब तक खेतों का बँटवारा नही होगा।

बिशन ने एक हजार देने की हामी पंचों के सामने भर ली, तब जाकर उसे अपने हिस्से के खेत मिले हालाकि वह जानता था कि बाप पर, किसी का कर्जा नही था। उन्होने अपने जीवन के आख़िरी वर्षों में बिछौना,

सारा कर्ज़ा चुकता कर दिया था।

बेटा इतना बड़ा झूठ बोलता रहा। उसे बड़ा गुस्सा आया। वह दाँतों से गुस्सा भींचती रही। अगर पंचों के सामने बेटे को झूठा साबित करती तो आखिर उसमें बदनामी किसकी होती। था तो उसी का खून। अपने जीते-जी कभी किशन-बिशन की कमाई का पैसा नहीं लिया। कहते,"मैं तो पका फल हूँ, पता नहीं किस दिन डाल से टपक जाऊँगा। अपना पैसा जमा रखो।"

कभी पति ने दोनों के हाथों के नीचे हाथ नहीं किया। खुद भरे-पूरे परिवार के बीच से हँसते-हँसते चले गए और उसे आखिरी दिनों में इस नरक में बिताने के लिए छोड़ गए। निपट अकेली।

दूसरी सावित्री

●

पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराने के पाँच महीने बाद भी सावित्री का कहीं पता नहीं चला। वह समझ नहीं पा रहा है—आखिर करे भी तो क्या। बड़ी समझदार है, पर दूसरा तब से ही गुमसुम है। दस बरस का हो गया है, समझता सब कुछ है पर अपने में ही खोया रहता है।

सावित्री के गायब होने की उसने पुलिस मे रिपोर्ट कराई। उसका पड़ोसी रामेश्वर भी उसी दिन से गायब था। रामेश्वर पर सन्देह होने के कई कारण थे। एफ० आई० आर० में रामेश्वर का नाम उसने लिखवा दिया। चौकी वालों ने पहले तो उसे दिन-भर बिठाए रखा और शाम को ऐसे ही खानापूरी करने लिए रिपोर्ट लिख ली। एफ० आई० आर० की पर्ची थामे वह चौकी से बाहर निकला तो उसे बड़ी तसल्ली हुई। वह सीना फुलाये, एक हाथ में पर्ची थामे ऐसे निकला जैसे उसके हाथ मे पर्ची नहीं बल्कि सावित्री का हाथ हो।

रिपोर्ट दर्ज कराने का उसे अनुभव नहीं था। वह तो पुलिस को अपना हितैषी समझ रहा था। आखिर कान्स्टेबिल रामसुमेर ने उससे चाय-पानी का खर्च भी लिया था।

रामसुमेर ने मजाक भी किया था, "ओरू को ठीक से सँभाला होता, उसे कण्ट्रोल में रखते तो ऐसा नहीं होता। पुलिस खोज तो करेगी। अगर वह मिल भी जाय और तुम्हारे साथ नहीं रहना चाहे तो पुलिस जबर्दस्ती नहीं कर सकती। इसलिए रिपोर्ट लिखाना बेकार है।"

वह पैरों पर गिर पड़ा रामसुमेर के—"बस एक बार खोज दो।" और फिर उसका ध्यान रामेश्वर की ओर गया। रामेश्वर उसका पड़ोसी था। बच्चों ने उसे दो-एक बार बताया था—माँ मुफ्त में उसे सौदा दे

देती है। उसने बात को टाल दिया। बेकार में कोई बवंडर खड़ा न हो जाय। सावित्री से डरता भी था।

सावित्री ने उसके साथ कोई बहुत अच्छा सलूक किया हो, ऐसी भी बात नहीं। पिछले छः-सात बरस में वह कई बार किसी-न-किसी के साथ भाग चुकी थी। वह महीने-दो महीने में या तो स्वयं ही लौट आती या फिर पता चलने पर वही मनाकर ले आता। मारपीट करने की हिम्मत ही नहीं होती उसको।

उस दिन तो हद ही हो गई। उसके सब्र का बाँध टूट गया। बरसों का गुबार उसने निकाल दिया। सावित्री के एक हाथ में महीने-भर तक प्लास्टर बँधा रहा और सिर पर आठ टाँके लगवाने पड़े सो अलग। उसने सोचा, अब वह रास्ते पर आ जाएगी।

हुआ यह था कि वह दूकान का सामान लेकर बाजार गया था। उसकी गैरहाजिरी में रामेश्वर दूकान पर सावित्री के पास पहुँच गया। दोनों ने एक-दूसरे की जूठी चाय पी और आपस में छेड़खानी करते रहे। बच्चे सब देख रहे थे। वह लौटा तो उसे मालूम हो गया। वह आपे से बाहर हो गया और सावित्री की जमकर सुनाई कर दी।

उसने अकेले में कई बार सोचा—एक सावित्री थी सत्यवान की और एक है उसकी। वह कई बार सावित्री को घर से निकालने की सोचता पर दूसरे ही क्षण उसे अपनी कमजोरी का ध्यान आ जाता।

कई बार वह सावित्री को लात-घूँसे जड़कर अपनी मर्दानगी दिखा देने की सोचता पर सावित्री को सामने देखते ही वह भीगी बिल्ली बन जाता।

लोगों ने भी उसे कई बार समझाया, "सावित्री भाग जाती है तो उसे लाता ही क्यों है? दस जगह मुँह मारने वाली गाय भला बँधी रह सकती है!" उसकी समझ में बात नहीं आई।

अक्सर ऐसा होता कि सावित्री के बिस्तर पर लेटने के बाद वह दीवार की तरफ मुँह कर लेता। सावित्री की फुसफुसाहट का उस पर कोई असर नहीं होता। सावित्री जब फिर भी नहीं मानती तो वह बड़ी सफाई से कहता, "बच्चे अब बड़े हो गए हैं, सब कुछ जानते-समझते हैं।"

सावित्री झुंझला उठती, "बहाने बनाने की जरूरत नहीं है। मैं सब कुछ जानती-समझती हूँ।"

एक दिन तो उसने कह ही दिया, "बच्चे बड़े हो गए हैं या तुममें अब कुछ दम नहीं रहा? जब कहीं जाती हूँ तो बुलाते क्यों पहुँच जाते हो?"

सावित्री के इस वार को सहने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। वह खून का घूंट पीकर रह गया।

सावित्री के तीन बच्चे हुए थे जिनमें से दो बचे हैं। अभी भी उसमें ताजगी थी। उसकी नशीली आँखें देखकर ही खुमारी चढ़ने लगती पर वह अकेले में उसे देखते ही मुरझा जाता है।

ब्याह हुआ तो शुरू के दिनों में उसे काफी जोश चढ़ता। पर धीरे-धीरे उसे लगा कि वह सावित्री की प्यास नहीं बुझा पा रहा है। सावित्री हर बार उसके असस हो जाने पर अधखुली आँखों से पूछती, "हो गया बस।" सावित्री की प्यास बढ़ती ही गई और वह खाली सुराही की तरह औंधा लुढ़ककर रह जाता।

सावित्री कितनी ही बुरी क्यों न हो, वह उससे नफरत भी तो नहीं कर पाता। सावित्री इस बात को जानती थी।

कई महीने बीत गए। रामेश्वर का आना बन्द हो गया। सावित्री भी इधर-उधर नहीं गई। लेकिन एक दिन उसे फिर शक हो गया। रामेश्वर का आना-जाना फिर बढ़ गया है ऐसा उसे लगा। वह दोनों को रंगे हाथ पकड़ना चाहता था। वह एक दिन दूकान का सामान खरीदने के बहाने घर से निकल गया। कॉलोनी में एकाध घण्टा बिताकर दूकान पर लौटा तो दूकान के भीतर रामेश्वर को खड़ा पाया।

वह तीर-सा दुकान के भीतर घुसा और रामेश्वर को जोरदार चाँटा मारा। फिर उसके दोनों कन्धे पकड़कर झकझोर दिए। रामेश्वर की चुप्पी उसे काटने दौड़ी।

"तुम इस दूकान पर मत आया करो। नहीं होगी हमारी बिक्री न हो, पर तुम्हें सौदा नहीं देंगे।"

"पड़ोसी समझकर दूकान से सौदा लेने आते हैं। इसमें तुम्हें क्या लॉस है।" रामेश्वर ने कहा तो वह भड़क उठा। उससे रहा नहीं गया—

बोला, "सौदा लेने आते हो या मेरी बीवी से मोहब्बत फरमाने आते हो। आइन्दा मैंने तुम्हें दूकान पर देखा तो मार-मारकर चमड़ी उधेड़ दूंगा।"

"मैं तो सौ बार आऊँगा। देखता-हूँ, कैसे रोकते हो? तुमने माँ का दूध पिया हो तो रोककर देख लेना।" रामेश्वर ने अकड़कर कहा।

रामेश्वर को और दो हाथ जमाते हुए कहा, "इतनी ही मोहब्बत है तो ले क्यों नहीं जाता इसे अपने साथ। मेरा भी रोज का जंजाल कटे।"

"हाँ-हाँ, जब मेरी मर्जी होगी ले जाऊँगा। तुझसे पूछने नहीं आऊँगा, याद रखना।"

सावित्री अब तक चुप थी। दोनों की तकरार रुकी तो उसने रामेश्वर को खा जाने वाली नजरों से देखा, "एक तो मेरी कमाई खाते हो, ऊपर से धौंस भी देते हो। दूकान मेरे नाम से है। मैं जो चाहूँगी करूँगी तुम्हें टाँग अड़ाने की जरूरत नहीं है।"

उसे जैसे किसी ने सरेआम नंगा कर दिया हो। वह बात को आगे बढ़ाना नहीं चाहता था—जानता था, इससे कॉलोनी में बदनामी ही होगी। जो नहीं जानते वे भी जान जाएँगे। पूरी कॉलोनी में अपना कहने के लिए भी कोई नहीं था।

इमरजेंसी में उसकी दूकान टूट गई और झोंपड़ी भी। वह भागदौड़ में लगा रहा। जब पर्चीं मिल रही थी तो वह बिखरा सामान सहेज रहा था। सावित्री ने दूकान अपने नाम लिखा ली और झोंपड़ी उसके नाम। उन्हें दो पर्चियाँ मिल गईं। वह तब सावित्री की समझदारी की तारीफ कर रहा था। पर उसे क्या पता था—सावित्री की यही होशियारी उसके गले का फन्दा बन जाएगी।

कॉलोनी नयी थी—लोग भी सब नये थे। लोगों को खुले आसमान के नीचे लाकर पटक दिया गया था। कई दिनों तक चारपाइयाँ खड़ी करके उन पर चादर का छप्पर डालकर काम चलाया। भागदौड़ करके उसने पहले झोंपड़ी बना ली और फिर धीरे-धीरे दूकान भी जमा ली। शुरू में इधर-उधर घूमकर चने-मूँगफली और सब्जी बेचने का काम खुद किया और दूकान पर सावित्री बैठने लगी। साल-भर में आठ-दस हजार का माल दूकान में भर लेने के बाद उसने घूमना छोड़ दिया।

सावित्री ने दूकान पूरी तरह सँभाल ली। सभी किस्म के ग्राहक आते। किसी के साथ सावित्री के हँसने-बोलने का अब वह बुरा भी नहीं मानता।

रामेश्वर के साथ तकरार होने के बाद वह दुकान से बहुत कम इधर-उधर जाने लगा। हफ्ते-दस दिन बाद सामान लेने बाजार गया और लौटकर आया तो देखा, सावित्री गायब थी। हजार-दो हजार रुपये की जमा पूँजी और चार-पाँच हजार के ज़ेवर बक्से में पड़े थे—सब कुछ गायब था। सावित्री के कपड़े-लत्ते तक नदारद थे। वह माथा पकड़कर बैठ गया। उसकी सावित्री ने ही उसे लूट लिया था। उसके सामने अँधेरा छा गया। बेटी ने खाना बनाया। उससे एक कौर भी नहीं तोड़ा गया।

दूसरे दिन सुबह वह पुलिस चौकी में रिपोर्ट लिखाने गया और शाम को लौटा। घर और दूकान पर कहीं उसका मन नहीं लगा। उसने पूरी कॉलोनी में खोजबीन की—सावित्री या रामेश्वर का कहीं भी कोई पता न चला। पुलिस रिपोर्ट दाबकर बैठ गई।

दस-बारह दिन इसी तरह बीत गए। एक दिन शाम को रामेश्वर अचानक प्रकट हो गया। उसने अपने मकान का ताला खोला। दोनों बच्चे उससे जाकर चिपट गए।

"हमारी माँ को लाओ!" दस-बारह दिन से गुमसुम बच्चों की आवाज फट पड़ी। दोनों ने रामेश्वर को दाँतों से काटना शुरू कर दिया।

रामेश्वर ने बच्चों को परे धकेल दिया और छूटते ही बोला, "अभी तो तुम्हारी माँ को भगाया है—अब तुम्हें भी ले जाऊँगा।"

इतनी देर तक वह चुपचाप देखता रहा। रामेश्वर से भिड़ने की उस की हिम्मत नहीं हुई। जब बच्चों को रामेश्वर ने धकेला तो वह एक झटके से उठा और आकर रामेश्वर से भिड़ गया। रामेश्वर ने उसे पटखनी देकर चित कर दिया। उसके मुँह से कराह निकलकर रह गई। रामेश्वर ने झटपट ताला लगाया और खिसक गया।

वह उठने की कोशिश करने लगा। उसका पैर सुन्न हो गया। आसपास खून फैल गया। बच्चे चुपचाप उसे देख रहे थे। तभी उसका पहली कॉलोनी का पड़ोसी गिरधर किसी काम से उधर आ निकला। उसने फुर्ती

बोला, "सौदा लेने आते हो या मेरी बीवी से मोहब्बत फरमाने
आइन्दा मैंने तुम्हें दूकान पर देखा तो मार-मारकर चमड़ी उधे
"मैं तो सौ बार आऊँगा। देखता हूँ, कैसे रोकते हो?
दूध पिया हो तो रोककर देख लेना।" रामेश्वर ने अकड़कर क
रामेश्वर को और दो हाथ जमाते हुए कहा, "इतनी ही
तो ले क्यों नहीं जाता इसे अपने साथ। मेरा भी रोज का जंज
"हाँ-हाँ, जब मेरी मर्जी होगी ले जाऊँगा। तुझसे पूछने
याद रखना।"

सावित्री अब तक चुप थी। दोनों की तकरार
रामेश्वर को खा जाने वाली नजरों से देखा, "एक तो मे
हो, ऊपर से धौंस भी देते हो। दूकान मेरे नाम से है
करूँगी तुम्हें टाँग अड़ाने की जरूरत नहीं है।"

उसे जैसे किसी ने, सरेआम नंगा कर दिया हो।
बढ़ाना नहीं चाहता था—जानता था, इससे कॉलोनी
होगी। जो नहीं जानते वे भी जान जाएँगे। पूरी कॉलोनी
के लिए भी कोई नहीं था।

इमरजेंसी में उसकी दूकान टूट गई और झोंपड़ी भी
लगा रहा। जब पर्चीं मिल रही थी तो वह बिखरा सामा
सावित्री ने दूकान अपने नाम लिखा ली और झोंपड़ी
दो पर्चियाँ मिल गईं। वह तब सावित्री की समझदार
रहा था। पर उसे क्या पता था—सावित्री की यही होशि
का फन्दा बन जाएगी।

कॉलोनी नयी थी—लोग भी सब नये थे। लोगों को
के नीचे लाकर पटक दिया गया था। कई दिनों तक चार
करके उन पर चादर का छप्पर डालकर काम चलाया। भाग
उसने पहले झोंपड़ी बना ली और फिर धीरे-धीरे दूकान भी ज
शुरू में इधर-उधर घूमकर चने-मूँगफली और सब्जी बेचने का काम
किया और दूकान पर सावित्री बैठने लगी। साल-भर में आठ-दस हज
का माल दूकान में भर लेने के बाद उसने घूमना छोड़ दिया।

अपने-पराये

●

राजू सन्न रह गया।

बड़े भाई इतना नीचे उतर आएँगे, ऐसा उसने सपने मे भी नहीं सोचा था।

जिस भाई ने उसकी नौकरी लगाने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाया था वही आज उसे नौकरी से निलम्बित करने का आदेश दे रहे थे।

वह महीने-भर से बिस्तर पर पड़ा था। उधर अपाहिज माँ अलग बिस्तर पर थी। पत्नी का एक गुर्दा पहले ही बेकार हो चुका था और दूसरा भी सिर्फ कामचलाऊ था। माँ और पत्नी की हालत से राजू कभी परेशान नही हुआ पर आज उसे बड़ा आघात लगा।

भाई साहब ने अपनी ही कम्पनी मे उसे नौकरी दिला दी। वे एक्जीक्यूटिव थे। पिता के रहते हुए काफी पढ़ लिया था सो अच्छी नौकरी मिल गई। राजू पढाई मे साधारण था सो क्लर्क लगा दिया पर राजू को साफ-साफ कह दिया कि वह किसी से यह नही कहेगा कि वह उसका भाई है। राजू ने इस आदेश का पालन किया। उसने कभी किसी के सामने भेद नही खोला।

पिता तीन कमरों का एक मकान छोड़ गए थे। भाई साहब को अपनी अत्याधुनिक पत्नी और बच्चों की वजह से कम्पनी के फ्लैट में रहने की सुविधा थी। माँ राजू के ही साथ रहने लगी। इस बीच राजू का विवाह भी हो गया।

कई वर्ष तक ठीक-ठाक चलता रहा। भाई साहब बूढ़ी माँ से मिलने कभी-कभार आ जाते, और उन्हे किसी से कोई मतलब नही था। इस

से काम लिया—जाकर टैक्सी ले आया और उसे अस्पताल पहुँचाया। बायें पैर में फ्रैक्चर हो गया था। डेढ़ महीने अस्पताल में पड़ा रहना पड़ा।

लौटकर आया। घर की हालत बहुत खस्ता हो गई थी। वह दूसरे दिन फिर पुलिस चौकी गया। पुलिस ने रिपोर्ट दर्ज करना तो दूर रहा, उल्टा उसे ही धमकाना शुरू कर दिया, "साले, झूठी रपट लिखाता है। पहले गवाह लेकर आ, तब केस बनेगा। सोच-समझ ले, वरना मारपीट के केस में तुझे बन्द कर देंगे।"

पाँच महीने बीत गये। सावित्री लौटकर नहीं आई। रामेश्वर अब खुलेआम आकर खाना बनाकर ले जाता है। चौकी में जाकर उसने बताया तो फिर उसे धमकाकर भगा दिया।

अब रह-रहकर उसके सामने एक ही डर बना है—पता नहीं कब यह दूकान उससे छीनकर रामेश्वर को सौंप दे। सपने में अक्सर उसे सिपाही नजर आता है, जो उसे दूकान खाली करने का आर्डर देता है।

यही सपना उसे रह-रहकर आतंकित करता है। इस आतंक के बावजूद अपनी सावित्री को वह नहीं भूल पाता है।

अपने-पराये

•

राजू सन्न रह गया।

बड़े भाई इतना नीचे उतर आएंगे, ऐसा उसने सपने में भी नहीं सोचा था।

जिस भाई ने उसकी नौकरी लगाने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाया था वही आज उसे नौकरी से निलम्बित करने का आदेश दे रहे थे।

वह महीने-भर से बिस्तर पर पड़ा था। उधर अपाहिज माँ अलग बिस्तर पर थी। पत्नी का एक गुर्दा पहले ही बेकार हो चुका था और दूसरा भी सिर्फ कामचलाऊ था। माँ और पत्नी की हालत से राजू कभी परेशान नहीं हुआ पर आज उसे बड़ा आघात लगा।

भाई साहब ने अपनी ही कम्पनी में उसे नौकरी दिला थी। वे एक्जीक्यूटिव थे। पिता के रहते हुए काफी पढ़ लिया था सो अच्छी नौकरी मिल गई। राजू पढ़ाई में साधारण था सो क्लर्क लगा दिया पर राजू को साफ-साफ कह दिया कि वह किसी से यह नहीं कहेगा कि वह उसका भाई है। राजू ने इस आदेश का पालन किया। उसने कभी किसी के सामने भेद नहीं खोला।

पिता तीन कमरों का एक मकान छोड़ गए थे। भाई साहब को अपनी अत्याधुनिक पत्नी और बच्चों की वजह से कम्पनी के फ्लैट में रहने की सुविधा थी। माँ राजू के ही साथ रहने लगी। इस बीच राजू का विवाह भी हो गया।

कई वर्ष तक ठीक-ठाक चलता रहा। भाई साहब बूढ़ी माँ से मिलने कभी-कभार आ जाते, और उन्हें किसी से कोई मतलब नहीं ग

बीच उन्होंने अपना मकान बनवा लिया।

पर उनके मन में बराबर यह खटका रहता कि राजू पिता के बनाये मकान पर कब्जा कर लेगा। अपना मकान बनाने पर उनकी निगाह उस मकान पर टिकी थी। माँ के पास कुछ जमा-पूँजी थी। उसने साफ-साफ कह दिया था कि मकान राजू के पास रहेगा और जो कुछ उसके पास नकदी है वह घनश्याम को दे जाएगी। इसके बाद भी बड़े भाई साहब ने सन्तोष नहीं किया। उन्होंने माँ से मिलने आना भी छोड़ दिया। बीमार अन्धी माँ कई बार उन्हें याद करती। राजू अपनी तरह से माँ को समझाने की कोशिश करता। भाई साहब कितनी घृणित हरकतों पर उतारू हैं, यह भी उसने नहीं बताया। वे कई बार उसे जान से मरवाने का भी प्रयास कर चुके थे।

भाई साहब की पदोन्नति होती रही। वे पर्सनल मैनेजर बन गए। राजू की पदोन्नति की बात दूर रही, उसे निकाले जाने की साजिशें होने लगीं। यह साजिश और कोई नहीं उसके अपने ही बड़े भाई करते हैं। वे चाहते कि राजू उनके आगे नाक रगड़े। राजू भी एक ही जिद्दी था। वह कभी उनके पास नहीं गया। उसकी काबिलीयत के सभी कायल थे। सी० आर० में उसकी तारीफ ही तारीफ थी। भाई साहब चाहते थे कि किसी न किसी आरोप में उसे निलम्बित कर दिया जाये, तब वह रास्ते पर आएगा।

राजू तो किसी और ही ख्याल में खोया रहता। वह परवाह ही नहीं करता।

एक महीने से राजू बिस्तर पर पड़ा था। उसने मेडिकल सर्टिफिकेट भिजवा दिया। गलती यह हो गई कि उसे रजिस्टरी से न भेजकर हाथों हाथ भिजवा दिया।

उसके हाथ में आदेश था—एक महीने से, बिना सूचना अनुपस्थित रहने के कारण निलम्बित किया जाता है। आदेश पर पर्सनल डिप्टी मैनेजर के हस्ताक्षर थे।

हफ्ते-भर पहले आफिस के कुछ साथी आए थे। उनसे ही पता चला कि उसका मेडिकल पर्सनल मैनेजर ने फाड़ दिया है।

एक दिन पहले ही उनका स्टेनो आकर उसे देख गया था। तब भी वह बिस्तर पर ही पड़ा था। वह समझ गया कि मामला कुछ गड़बड़ है। भाई साहब को कई वर्ष बाद यह मौका मिला था। हाथ आया मौका वह कैसे जाने देते।

आफिस के साथियों ने उससे पूछ लिया, "राजू, आखिर साहब इतना तुम्हारे पीछे क्यो पड़े हैं ?"

"पता नहीं क्यों पड़े हैं, अपनी समझ से बाहर की बात है यार।"

"ऐसा कैसे हो सकता है। इतने लोग आफिस मे हैं। फिर तुम्हारी नौकरी भी साहब की वजह से लगी, यह तो सबको पता है। लोग तो यह समझते हैं कि तुम्हारी कोई रिश्तेदारी है उनसे।"

"हाँ, वे मेरे बड़े भाई हैं।"

"क्या ?"

आश्चर्य से सब उसकी ओर देखते रह गये। जैसे उसने कोई भयंकर भूल कर दी हो।

"हाँ, बात सही है। आज तक मैंने किसी को नही बताया। अगर तुम लोग जिद्द नही करते तो मैं तुम्हें बताने वाला नही था। आज यही भाई मेरी जान के दुश्मन बने हुए हैं।"

राजू ने कमरे मे लगी एक तस्वीर की ओर इशारा किया। राजू और भाई साहब की तस्वीर लगी थी।

उसके आफिस के साथी कभी उसे देखते तो कभी उस तस्वीर को।

कौन करेगा इस बात पर विश्वास ? कर भी कैसे सकता है ? लोग उसकी बात को झूठ मानें, पर यह बात सौ फीसदी सच है।

दोनों भाइयों की फोटो देखकर विश्वास करना ही पड़ा। वास्तविकता से इन्कार भी नही किया जा सकता था।

राजू के सामने बचपन की एक धुंधली तस्वीर सामने तैर गई। भाई साहब और वह एक-दूसरे के बिना रह नही सकते थे। एकसाथ ही सोते थे, और वह उसका ध्यान भी रखते थे। आज वे ही उसे रास्ते से ही हटाने का दुष्चक्र रच रहे थे।

उसे लगा कि पैसा ही सारे झगड़े की जड़ है। पैसे ने ही भाई को

उसका दुश्मन बना दिया है। अगर कहीं वह भी अफसर होता तो शायद भाई साहब भी उस पर हाथ डालने से पहले सौ बार सोच लेते। पर कहाँ वह छोटा-सा कर्मचारी और कहाँ भाई साहब उसी आफिस के आला अफसर।

राजू सोचता, अफसर होने से ही क्या भाई साहब के लिए वह और माँ दोनों पराये हो गए।

माँ ने बड़े अरमान और सपने सँजो रखे थे। वे सब अरमान, सपने मिट्टी में मिल गए। जब आँखें थीं, बालकोनी में बैठे-बैठे बड़े बेटे का इन्तजार करती। दूसरे मकान में जाने के बाद भी उसका क्रम टूटा नहीं। फिर अचानक ही ध्यान आया कि बड़ा बेटा अब उसके साथ नहीं रहता। फिर चुपचाप भीतर आ जाती। यह उसकी रोज की आदत बन गई।

राजू कई बार माँ को समझाता। माँ कहती, किसी भी उँगली में चोट लगे, दर्द बराबर होता है। तू सदा साथ रहता है। बलवीर को देखने के लिए आँखें तरस जाती हैं।"

राजू चुप्पी लगा जाता। पत्नी की वजह से माँ की देख-रेख का पूरा भार उस पर ही था। कभी-कभी वह सोचता कि भाई साहब के अलग रहने से उसे माँ की सेवा का जो मौका मिल रहा है उसका फायदा ही उठा ले। बूढ़ा जर्जर शरीर है। फिर माँ कहाँ से मिलेगी। पिता की सेवा तो नहीं कर पाया। पिता के बदले माँ की सेवा कर ले तो अच्छा है।

शादी के कुछ दिनों बाद ही भाई साहब-भाभी दूसरे मकान में चले गए। भाई साहब का कहना था कि कम्पनी ने उनके लिए किराये पर मकान ले दिया है। उन्हें जाना ही पड़ेगा। तब राजू की शादी भी नहीं हुई थी। माँ चाहते हुए भी रोक नहीं पाई।

इसके बाद भाई साहब ने अपना आलीशान बँगला भी बनवा लिया। राजू की शादी पर वे मेहमान की तरह आए थे। फिर उसी तरह वापस भी चले गए थे। एक प्रकाश था जो पराया होते हुए भी माँ के लिए उसका दूसरा बेटा बन गया।

प्रकाश किसी गेस्ट हाउस में रहता था। उसके माँ-बाप बचपन में ही मर गए थे। राजू की माँ से उसे माँ का प्यार मिलता। माँ से मिलने

के लिए वह जब-तब चला आता माँ, को भी बड़ा सहारा महसूस होता। उसे लगता, उसके दोनों बेटे उसके पास ही हैं।

राजू को निलम्बन आदेश मिला तो एक क्षण के लिए जैसे वह सकते में आ गया। कोई न कोई निर्णय तो लेना ही था। उसने मेडिकल सर्टिफिकेट की डुप्लीकेट प्रति प्राप्त कर ली। उसने निर्णय ले लिया कि वह जनरल मैनेजर से सीधे मिलेगा। अगर फिर भी कुछ नहीं हुआ तो अदालत में जाएगा।

किसी तरह से जनरल मैनेजर से मिला।

—सर! मैं लम्बे अर्से से बीमार था। मैंने मेडिकल भेजा। उसके बाद भी मुझे सस्पेंड कर दिया गया।

उसने निलम्बन आदेश, मेडिकल की कापी और अपनी एप्लीकेशन उन्हें दे दी। जनरल मैनेजर ने एक सरसरी निगाह डाली और फिर निलम्बन आदेश रद्द कर दिया।

यह भाई साहब की सबसे करारी हार थी। वे सोच भी नहीं सकते थे कि राजू यहाँ तक पहुँचेगा। वे तो इस इन्तज़ार में थे कि राजू भागा-भागा उनके पास आएगा। यह पैसे और पद की गहरी शिकस्त थी।

माँ की तबीयत कई दिनों से खराब चल रही थी। राजू ने भाई साहब को कई बार खबर भिजवाई। वे माँ की खबर लेने तक नहीं आए। माँ थी कि बार-बार पूछती, "बलबीर नहीं आया!"

राजू के पास कोई उत्तर नहीं था। बीमार माँ को उसने हमेशा अँधेरे में ही रखा। अब भाई साहब के बारे में कुछ बताकर दुखी नहीं करना चाहता था। माँ जब भी पूछती, वह टाल जाता। कोई और बात छेड़ देता।

माँ आखिरी साँस ले रही थी, उसके अब और जिन्दा रहने की कोई आशा नहीं थी। सारी भागदौड़ में सिर्फ प्रकाश ही तो था जो उसके साथ लगा था।

माँ की साँस उखड़ गई। उसकी गर्दन एक ओर लुढक गई। तीसरा पहर था। चार बजने वाले थे। राजू ने तुरन्त भाई साहब को खबर भिजवाई। समय बीतता रहा, भाई साहब नहीं आये।

सुबह तक भी भाई साहब का कहीं पता नहीं था। शव को आखिर

कब तक घर मे रखा जा सकता था। सुबह आठ बजे शवयात्रा निकाली गई। तमाम सम्बन्धी-रिश्तेदार शामिल थे—अगर कोई नही था तो वह थे भाई साहब।

इधर अर्थी श्मशान पहुँची और उधर भाई साहब राजू के घर जा पहुँचे। घर में शोक का वातावरण था। भाई साहब ने राजू की पत्नी को दिलासा देने की भी जरूरत नही समझी। वे गाड़ी खड़ी करके सीधे माँ के कमरे मे पहुँचे और उनके बिस्तर, अलमारी, वहाँ पड़ी मेज की दराजों को टटोलने लगे। उनके हाथ कुछ नही लगा। वे गुस्से मे हाथ-पाँव पटकते हुए "सबको देख लूँगा" कहते हुए बाहर निकल गये।

घर में आई सारी औरतें आँखें फाड़-फाड़कर उनको देखती रहीं। कभी वे उन्हें देखतीं तो कभी राजू की पत्नी को, जो सुधबुध खोकर पड़ी हुई थी।

श्मशान में शव के जल जाने तक राजू और दूसरे लोग भाई साहब का इन्तजार कर रहे थे। उन्हें क्या पता था कि वे तो न जाने कब से अपनी माँ के मरने का इन्तजार कर रहे थे।

पितृ-भक्ति

●

आखिर बूढ़े की मौत हो गई।

कई दिनों से वह जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहा था। भरा-पूरा परिवार था बूढ़े का। पांच बेटे। पांचों कमाऊ पूत और एक से बढ़कर एक। तीन अपनी-अपनी नौकरियों पर गाँव से दूर अलग-अलग शहरों में थे। वहीं बस गए थे। कभी-कभार दो-चार बरस में अपने बूढ़े बाप से मिलने आ जाते। मेहमान की तरह आते और तीन-चार दिन बाद चलते बनते। बूढ़े बाप के प्रति शायद इतनी ही जिम्मेदारी काफी समझते थे। कभी-कभी बूढ़ा उनसे मिलने चला जाता। उसका जी शहर में नहीं लगता और गाँव लौट आता। यों गाँव से बेटों का सम्पर्क करीब-करीब टूट चुका था।

उम्र के आखिरी मोड़ पर आकर बूढ़ा चिड़चिड़ा हो गया था। बीमारियों ने शरीर को जर्जर बना दिया। एक के बाद दूसरी बीमारी आकर घेर लेती। घर में बेटे-बहू भी उसका दुःख नहीं समझते। वह उपेक्षित दूसरी मंजिल के एक कोने में पड़ा रहता। किसी तरह घिसटते-घिसटते शौचादि के लिए उतरता।

अपने जमाने में उसने काफी अच्छे दिन देखे थे पर जिन्दगी के आखिरी मोड़ पर आकर बुरी तरह थक गया। घर से बाहर आने-जाने में वह लाचार हो गया। अब वह कहीं बाहर भी नहीं जा पाता। जिन्दगी भर वह घर से इधर-उधर दौड़ता ही रहता। घर में जो बेटे-बहुएँ थी उन्हें भी उसकी खोज-खबर लेने की फुर्सत कम ही मिलती। वे भी दिन में कभी-कभार आकर खड़े-खड़े पूछताछ कर जाते। सब अपने-अपने में मस्त रहते।

यह मकान बूढ़े ने बड़े चाव से बनाया था। वह चाहता था कि कोई ऐसा काम करे जिससे इलाके मे उसका नाम हो। आखिर उसने तिमंजिला आलीशान मकान बनवा लिया। गाँव मे ही क्या पूरे इलाके में अपनी तरह का मकान बन जाने से उसे बहुत सन्तोष हो गया। गाँव मे तो किसी से उसे कोई मतलब नही था। अपने ही काम और भागदौड़ में वह गाँव वालों से कटता चला गया। गाँव वालों को पता नही चलता—कब वह घर आता और कब निकल जाता। उसने काफी पैसा बटोर लिया। पैसा कमाने की हवस ने उसे गाँव से ही क्या अपने परिवार से भी दूर कर दिया। उसके पास पैसा और सम्पत्ति जुटती रही और वह अपने परिवार से कटता चला गया। अपने पोते-पोतियों तक के लिए वह अजनबी बन गया। दो-चार महीने मे कभी घर आता और एक-आध रात रहकर फिर चल देता। वैद्यकी उसका धन्धा था और दूर-दूर के इलाकों मे अपना हुनर दिखाता। जब आता तो उसके साथ घोड़ों पर सामान लदा आता और फिर उन्ही के साथ लौट जाता।

वह अब चलने-फिरने से मजबूर हो गया तो पहली बार उसे अपनी लाचारी का बोध हुआ। उसे पहली बार लगा कि परिवार के लोग उसे नही बल्कि उसके पैसे को प्यार करते हैं। शहर में बसे बेटों ने भी जब बाप के बीमार पड़ने की खबर सुनी तो वे भी चक्कर लगाने लगे। सबको अपनी-अपनी फिकर होने लगी। शहरी बेटों को डर हो गया कि घर में जो भाई हैं वे बूढ़े की सम्पत्ति हथिया लेंगे। घर में जो बेटे थे उनके मन मे भी डर बैठ गया कि बाप उनके भाइयों को पता नही कब क्या और कितना दे दे। सारे भाई भीतर ही भीतर एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या-भाव रखने लगे। भाइयों के बीच ही शत्रुता पैदा हो गई। हर भाई बाप के सामने से टलना ही नही चाहता। कोई किसी भाई को अकेला बाप के सामने छोड़ने से डरता। हर एक के मन में डर बैठ गया।

बूढ़े की हालत काफी बिगड गई। वह कुछ ही दिनों का मेहमान रह गया। बेटों की गतिविधियाँ काफी बढ़ गईं। उनमें सेवा करने की होड़ लग गई। फल और टॉनिक बूढ़े के कमरे मे हर समय दिखाई देने लगे।

बूढ़े ने अपने अन्तिम दिनो में महसूस किया कि नाते-रिश्ते सब झूठे

हैं। सबको पैसे से प्यार है। उसने दिन देखा न रात। हाड़-मांस गलाकर पैसा कमाया। अपनी सुख-सुविधा को तिलांजलि दे दी। बेटों को पढ़ाया-लिखाया। सब अपने-अपने ठिकाने से लग गए। कभी किसी ने यह नहीं कहा कि इतनी भागदौड़ मत करो। सबको उसके पैसे से प्यार था। उसे इन सारे सम्बन्धों से नफरत हो गई। आखिर किसके लिए उसने अपनी जिन्दगी को कुर्बान कर दिया। सुख के नाम पर उसे कुछ भी तो नहीं मिला। अब तो उसके पास सिर्फ पछतावा-भर रह गया।

उधर बूढ़ा आखिरी सांस ले रहा था और ऐन मौके पर मँझले को मण्डी जाने की धुन सवार हो गई। मण्डी थी भी पचास मील दूर। सारी खरीद-फरोख्त वहीं होती थी। भाइयों ने उसे समझाने की कोशिश की पर उस पर कोई असर न पड़ा।

जाते-जाते वह भाइयों से कहता गया—"सुबह की बस से लौट आऊँगा। अगर बाइचांस पिताजी की डैथ हो भी जाय तो तुम लोग रुके रहना। जब तक मैं लौट न जाऊं तब तक अर्थी मत उठाना।"

यह कहकर एक झोला कन्धे में डालकर मँझला निकल गया। चारों भाई वहीं जमे थे। सब चुप। कोई किसी से बोलता ही न था। सबकी निगाहें बाप पर नहीं उसकी सम्पत्ति पर टिकी थी। सभी चाहते थे कि वही अकेला रहे तो अच्छा है। चारों के मन में यह डर भी पैदा हो गया कि मँझला ऐन मौके पर खिसक गया। वही सब कुछ न ले गया हो।

तीसरे पहर के बाद से ही बूढ़े की सांस उखड़ने लगी। एक भागकर गंगाजल ले आया। दूसरा जल्दी-जल्दी कहीं से गाय ले आया ताकि गोदान किया जा सके। गाय क्या छोटी-सी बछिया थी। किसी तरह ठेल-ठालकर उसे दूसरी मंजिल में पहुँचाया गया। गोदान से पहले ही बूढ़े ने दम तोड़ दिया। गाय पहुँच गई थी सो मृत देह के पास ले जाकर उसकी पूँछ मृतक के हाथ से छुआ दी गई।

मँझला तो मण्डी जा चुका था। गाँव के लोगों को खबर मिली। ऐसे मौके पर दुश्मनी तो निकाली नहीं जा सकती। औरत-मर्द सब घड़ी-दो घड़ी के लिए आते-जाते रहे। सारी रात गाँव के लोग मुर्दे के पास बैठे रहे।

सुबह हुई तो अन्त्येष्टि के लिए भागदौड़ शुरू हो गई। मण्डी से पहली बस सुबह आठ बजे आ जाती थी पर मँझला नौ बजे तक घर नहीं पहुँचा। अब सब मुर्दा उठाने के लिए जल्दबाजी कर रहे थे। चारों भाई भी क्या करते। मुर्दा देह को वे भी आखिर कब तक पड़ा रहने देते। घाट दस मील दूर था। लौटना भी था। नौ बजे के बाद मुर्दा लेकर सब चल दिये। घर में रह गईं औरतें और बच्चे।

शाम को पाँच बजे की बस से मँझला लौटा। तब तक मुर्दा फूँकने के लिए गए कुछ लोग लौट आए थे।

मँझला यह सब देखकर बिफर उठा—"किसके आर्डर से यह सब किया गया। मेरा इन्तजार तो कर सकते थे। गाँव वाले न आते तो क्या था। हम पाँच भाई तो थे।"

औरतें सब सन्न थीं। भाई तब तक लौटे भी न थे। गाँव के कुछ बुजुर्ग घर में थे। उन्होंने समझाने की कोशिश की पर उस पर जैसे कुछ असर हुआ ही नहीं। वह गुस्से में था। जोर-जोर से चिल्ला रहा था। मातम से भरे घर में मँझले की चिल्लाहट सुनकर लोग भौचक्के थे।

राजू पर तो जैसे कोई जुनून सवार था। ऐसा लगता था मानो वह मारपीट किए बिना नहीं रहेगा। वह ऐसे चीख रहा था जैसे जानबूझकर किसी ने उसके बाप को मार दिया हो।

भाई लौटकर आए तो मँझला और बिफर उठा। वह चीखा—"तुम लोगों ने जानबूझकर मेरा इन्तजार नहीं किया। मैं जब कहकर गया था तो रुके क्यों नहीं। आखिर ऐसी कौन-सी आफत आ रही थी!"

गाँव के कुछ लोगों ने उसे समझाने की कोशिश की तो वह उन पर भी बिगड़ उठा—"आप लोग बीच में न बोलें तो अच्छा रहेगा। आप लोगों के लिए उल्टा-सीधा मुँह से निकल गया तो बाद में मुझे भी अफसोस होगा। आप भी नाराज होंगे। अच्छा होगा कि आप लोग अपने-अपने घर चले जाएँ। यह मेरा घरेलू मामला है, मैं खुद ही निपट लूँगा। इन सबको देख लूँगा।"

मँझला सारे भाइयों में सबसे अधिक सभ्य-सुसंस्कृत था। उसकी शिष्टता के लिए सब उसकी तारीफ करते थे। उसे कभी किसी ने ऊँचा

बोलते नहीं सुना था। आज मातम वाले घर में उसको गरजता हुआ देखकर सभी हक्का-बक्का थे।

गाँव वालों ने वहाँ से चुपचाप खिसकना ही ठीक समझा। अब घर में वही पाँचों भाई थे।

राजू ने गरजकर कहा—"तुम सबने साजिश की ताकि मैं पिताजी की चिता को अग्नि भी न दे सकूँ। मैं यही मण्डी तक ही तो गया था।"

सारे भाई चुप्प। आखिर छोटे से न रहा गया। वह बोला—"भइया, बहुत हो चुका। बहुत तमाशा दिखा दिया आपने।"

"छोटे, तुम सबने पिता की सम्पत्ति हथियाने के लिए ही यह सब किया है। आज तक तुम सब कहाँ थे। बुढ़ापे में कितनी सेवा तुम लोगों ने की है मुझे सब पता है। आज तुम सब पितृ-भक्त बन गए हो। जीते बाप की सेवा करते तो पुण्य मिलता। तुम्हें मरे बाप को फूँकने की ज्यादा जल्दी थी।"

सबसे बड़ा इतनी देर से चुप था। वह बोल पड़ा—"मँझले, बस करो अब, बहुत बरस चुके तुम। शराफत की भी हद होती है। बाप का अच्छा मातम मना रहे हो तुम। बड़ी सेवा कर रहे हो बाप की। इससे पितरों की बड़ी नाक ऊँची कर रहे हो। हमारे भी पिता थे वे। आखिर तुम्हें ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा कि आखिरी घड़ी में उन्हें छोड़कर चले गए।"

उसका यह कहना था कि जलती आग में घी पड़ गया। बैठे-बैठे वह उछल पड़ा।

वह देहरी पर आकर खड़ा हो गया। फिर बोला—"चारों कितने पितृ-भक्त हो देख लिया है मैंने। कोई गया तुममें से बाप की अस्थियाँ लेकर हरिद्वार। ठीक है, अस्थियाँ न सही मैं जाऊँगा तर्पण करने हरिद्वार।"

जहाँ उनके पिता ने अन्तिम साँस ली थी। उसने वहाँ की मिट्टी खुरची और रूमाल मे बाँध ली। उसके बाद बोला—"मुझे बाप की सम्पत्ति में से कुछ नही चाहिए। तुम्हें ही मुबारक हो। मुझे कोई हिस्सा नही चाहिए। मैं हरिद्वार जा रहा हूँ। अपने पिता की तेरहवी वही करूँगा।"

यह कहकर मँझला माथा झुकाकर वहाँ से निकल गया।

चारो भाइयो ने पिता की अलमारी का ताला खोला। वहाँ फटे-पुराने कपड़े के टुकड़ों मे बँधी हुई थोड़ी-सी रेजगारी के अलावा कुछ भी नही था। चारो एकसाथ दहाड़ मारकर रोने लगे। उनका बाप मर गया था।

बेकारी

●

वह फिर लौटकर शहर में आ गया था।

अजीब-सी बदहवासी में वह शहर छोड़कर चला गया था। उसने निर्णय कर लिया था कि लौटेगा नहीं, मगर फिर लौट आया था। ऐसा इसी बार नहीं हुआ कि वह निर्णय ले लेने के बाद फिर अनिर्णय की स्थिति में पहुँच गया हो, पहले भी कई बार ऐसा हो चुका था।

वह अब तक निर्णय ले लेने के बाद भी अनिर्णय की स्थितियों में ही अधिक रहा था। लोग उसके बारे में अक्सर तरह-तरह की बातें करते थे और वह वैसे ही उन्हें भी अनसुना करता रहा है।

उसे बड़ा आश्चर्य इस शहर में लौटकर हुआ। एक धारणा-सी जिनके बारे में उसके मन में बनी हुई थी वह क्षण से टूट गई थी। उसे लगता था कि वह अपने आपको धोखा देने के सिवाय अब तक कुछ नहीं कर सका है। दूसरों को धोखा देना तो आसान है पर आदमी जब अपने को ही धोखा देने लगता है तो जिन्दगी ही धोखा लगने लगती है। अजीब-से हालात में उसे शहर छोड़कर जाना पड़ा था। लौटा भी तो हालात में सुधार नहीं हुआ। अजीब तनाव भरा वातावरण उसके चारों ओर फैला हुआ था।

उसने सबसे पहले अनु से मिलने का निर्णय लिया। अनु हमेशा ही उसे संगमरमर की तराशी हुई मूर्ति की तरह लगती रही जिसे छूने में भी संकोच होता है।

अनु से मिला। वह एकदम उसे अपने सामने देखकर गम्भीर हो गई। उसकी सदा की मुस्कान पता नहीं कहाँ गायब थी। अचानक उसे ध्यान आया कि वह तो अब बहुत बड़ी आफिसर हो गई है। वह बहुत कुछ कहना चाहकर भी संकोच से भर गया। बहुत देर आगे बातें कहने के लिए वह

यह कहकर मँझला माथा झुकाकर वहाँ से निकल गया।

चारों भाइयों ने पिता की अलमारी का ताला खोला। वहाँ फटे-पुराने कपड़े के टुकड़ों में बँधी हुई थोड़ी-सी रेजगारी के अलावा कुछ भी नहीं था। चारों एकसाथ दहाड़ मारकर रोने लगे। उनका बाप मर गया था।

बेकारी

●

वह फिर लौटकर शहर में आ गया था।

अजीब-सी बदहवासी में वह शहर छोड़कर चला गया था। उसने निर्णय कर लिया था कि लौटेगा नहीं, मगर फिर लौट आया था। ऐसा इसी बार नहीं हुआ कि वह निर्णय ले लेने के बाद फिर अनिर्णय की स्थिति में पहुँच गया हो, पहले भी कई बार ऐसा हो चुका था।

वह अब तक निर्णय ले लेने के बाद भी अनिर्णय की स्थितियों में ही अधिक रहा था। लोग उसके बारे में अक्सर तरह-तरह की बातें करते थे और वह वैसे ही उन्हें भी अनसुना करता रहा है।

उसे बड़ा आश्चर्य इस शहर में लौटकर हुआ। एक धारणा-सी जिनके बारे में उसके मन में बनी हुई थी वह मन से टूट गई थी। उसे लगता था कि वह अपने आपको धोखा देने के सिवाय अब तक कुछ नहीं कर सका है। दूसरों को धोखा देना तो आसान है पर आदमी जब अपने को ही धोखा देने लगता है तो जिन्दगी ही धोखा लगने लगती है। अजीब-से हालात में उसे शहर छोड़कर जाना पड़ा था। लौटा भी तो हालात में सुधार नहीं हुआ। अजीब तनाव भरा वातावरण उसके चारों ओर फैला हुआ था।

उसने सबसे पहले अनु से मिलने का निर्णय लिया। अनु हमेशा ही उसे संगमरमर की तराशी हुई मूर्ति की तरह लगती रही जिसे छूने में भी संकोच होता है।

अनु से मिला। वह एकदम उसे अपने सामने देखकर गम्भीर हो गई। उसकी सदा की मुस्कान पता नहीं कहाँ गायब थी। अचानक उसे ख्याल आया कि वह तो अब बहुत बड़ी आफिसर हो गई है। वह बहुत कुछ कहना चाहकर भी संकोच से भर गया। बहुत ढेर सारी बातें कहने के लिए वह

सोचकर चला था। पर उसे देखकर कुछ भी नहीं कह सका।

उसने महसूस किया कि अनु बहुत बदल गई है। वह अनु अब पता नहीं कहाँ खो गई है जिसे दो-तीन वर्ष पहले वह छोड़कर गया था। एक अनु वह थी और एक यह। उसकी अपनी अनु—जिसके लिए वह सपने सँजोया करता था बिल्कुल सपने की तरह खो गई थी। झन से काँच का कोई बर्तन उसके अन्दर ही अन्दर टूट गया था।

वह अर्से से बेकार था। अनु आखिर आफिसर थी। लगा, उसने आकर गलती की। न आता तो क्या बिगड़ जाता। ऐसा क्यों हो जाता है, आदमी जिसे अपना समझता है वह उसकी गलतफहमी साबित होती है। शायद अनु को उसका आना खल गया, उसने कहा तो कुछ नहीं पर उसका मौन कह रहा था—एक बेकार आदमी का काम ही क्या है उससे मिलने का?

एक अनु वह थी जिस पर वह अपना अधिकार समझता था। उसकी अलमारी में सारी चीजें एक-एक करके रखी रहती थीं जिनको वह छान लेता था। और अब उसका साहस नहीं था कि अनु से उसी अधिकार से बातें करे।

बेकार आदमी को कोई नहीं चाहता। आदमी बेकार होता है तो सब यही समझते हैं कि कहीं पैसे माँगने तो नहीं आ गया! हर आदमी बुरी तरह कटने लगता है। अनु भी उससे कटने लगी है तो हर्ज ही क्या है। वह बेकार है। अपने आप से ही वह कटने लगा है।

गुस्सा उसे अनु पर नहीं आया। अपने पर ही गुस्सा हो आया। कभी उसे अनु से लड़ने मे अच्छा लगता था, अनु चिढ़ती थी। और अब आफिसर अनु उन सब बातों को लौटा सकती है। वह सहजता लौटकर नहीं आ सकती—कभी नहीं।

नौकरी मिलती नहीं। दिन भर तवे-सी तपती हुई देह, सड़कों पर माथे का पसीना पोंछते हुए नौकरी की खोज में भटकना उसे अच्छा नहीं लगता। अक्सर ऐसा भी हो जाता है कि प्यास से होंठ बुरी तरह से सूख जाते हैं। पास में खड़े पानी बेचने वाले को अनदेखा कर जीभ को होंठों पर फिराते हुए चुपचाप निकल जाना पड़ता है। तारकोल से पिघलती हुई

सड़कों पर चप्पलें फटकाते हुए वह सुविधा मे जीने वालों की असुविधा का खयाल करते हुए नहीं मिलता।

घरवालो के विचार से वह निठल्ला हो गया है। कही अब काम नही करना चाहता। भला इतने बड़े शहर में कही काम की कमी है। वह कैसे समझाए घरवालों को। यही उसे खयाल आ जाता है, बुजुर्गों की निगाह में युवा पीढी निकम्मी हो गई और युवा पीढी की निगाहों में बुजुर्गों को सिवाय उपदेश देने के कोई काम नहीं। यह न समझने की दिक्कत दीवार बन गई है।

वह सोचता है, उसे भी तो कोई समझने की कोशिश नहीं करता।

उसे अखबारों मे छपा हुआ किसी नेता का भाषण याद हो आता है। नेता किसी अकाल-पीड़ित क्षेत्र में गए थे—उनके पास लोगों की भीड़ उमड़ आई थी। ऐसे लोगों की भीड़ जिनकी जठराग्नि इतनी तेज हो गई थी कि पेड़ की छाल तक खा गए थे। नेता जी ने उन्हें देखा। उन्होंने कहा, "अनाज नही मिलता तो आप लोग डबलरोटी खाइए।"

ऐसा ही कुछ एक बार अनु ने भी तो कहा था। और वह मुस्कुरा भी न सका था। कहाँ अनु भारी रकम पाने वाली और कहाँ वह कलम के सहारे जीने वाला साधारण-सा आदमी!

कभी-कभी अपने पिताजी के पत्रों को पाकर भन्ना उठता है। वह गम्भीर होकर सोचने लगता है कि वह क्या सचमुच कुछ नही करना चाहता। यह शहर रेगिस्तान बन गया है उसके लिए। हर चाह मृगतृष्णा ही बन जाती है।

अनु को उसका बेकार रहना बड़ा खटकता रहा। वह नही चाहती कि बेकार आदमी उसे मिलता रहे। आखिर क्या कहकर वह अपनी सोसाइटी मे उसका परिचय कराये—फिलहाल बेकार है कहकर?

उसे खुद अनु से मिलने में बड़ा संकोच होता है। कई बार उसके घर के करीब से गुजरने के बावजूद कतराकर निकल गया है।

अनु की शादी होने वाली थी। उसने जान-बूझकर मिलना कम कर दिया। एक-आध बार उससे मिला भी लेकिन कोई खास बात नही हुई।

उस दिन अनु ने देख लिया और साथ घसीटकर घर ले गई। चाय

पिलाने के बाद नसीहतें देती हुई बोली—"अब कहीं कुछ कर क्यों नहीं लेते हो। ऐसे कब तक चलता रहेगा। एक तो तुम बेकार हो, उस पर इतनी सिगरेट फूंक जाते हो, सिगरेट पीना बन्द कर दो। तुम्हारे मुँह से सिगरेट की बदबू आती है, पास बैठा नहीं जाता।"

मानो वह जिन्दगी-भर उसके पास बैठे रहना चाहती हो।

उसी ने एक बार कहा था—जिन्दगी भर साथ रहकर भी आदमी एक-दूसरे को नहीं समझ पाता और फिर तुम मुझे कैसे समझ पाओगे?

वह कुछ नहीं बोला था। उसके पास कहने को कुछ भी नहीं था। अनु ने कहा था, शादी के बाद भी वह आता रहे। अपने पति से उसने पहले ही परिचय करा दिया था।

अनु ने शादी पर बुलाया था और कहा था दो-तीन दिन पहले आ जाए। वह ठीक बारात आने से कुछ ही देर पहले पहुँचा था। अनु गुड़िया की तरह सजी-सँवरी बैठी थी, अपनी सहेलियों से घिरी। वह अपना चेहरा दिखाकर बाहर चला आया।

अनु विदा हो गई। अनु के रूखे व्यवहार के बावजूद उसे लगा कि वह एकदम अकेला हो गया है। ऐन दूसरे दिन वह मिल गई—उसके चेहरे पर अजीब-सी खुमारी थी। उसकी बातचीत का लहजा और बदल गया था।

रिश्तेदारों ने उसे निठल्ला समझ लिया था। सामने कुछ नहीं कहते पर उसकी पीठ पीछे उसके जानने वालों से उल्टी-सीधी बातें करते। यह सब सुनकर उसकी जबान तीती हो जाती।

गाँव जाने का भी मन नहीं होता। पिता भी अक्सर उपदेश देते—मानो वह कुछ करना ही नहीं चाहता है। जब वह स्कूल में पढ़ता था तभी उसकी शादी हो गई—घरवालों को खेती का काम करने के लिए एक नौकरानी की जरूरत थी; उसकी पत्नी इस जरूरत को पूरा कर रही थी।

उसकी पत्नी ने कई बार उलाहना दिया था।

"तुम अगर कहीं नौकरी कर रहे होते तो मैं क्या दिन-रात इसी तरह खटती रहती। ब्याह हुआ नहीं कि लोग अपनी औरत को साथ ले जाते हैं, एक तुम हो…।"

वह सोचता, क्या सचमुच वह कुछ नहीं करना चाहता। उसके कुछ न करने से अपने ही घर मे वह उपेक्षित हो गया था, इसी वजह से उसकी पत्नी की भी कोई परवाह नहीं करता था क्योंकि वह एक निकम्मे आदमी की पत्नी थी। सारा दिन खटने के बावजूद तबीयत खराब होने पर भी उसे कोई नही पूछता। कई बार वह तेज बुखार में भी खेतों में काम करने गई थी। वह रोकता भी किस अधिकार से।

उसने तय कर लिया था कि अब वह किसी से भी कोई मतलब नहीं रखेगा, कम से कम ऐसे लोगो से जिन्होंने हमेशा उसे तिरस्कार की नजरों से देखा है। लोगों के चेहरे कितनी जल्दी बदल जाते हैं यह भी उसने कई बार महसूस किया था। उसने कई चेहरों की नकाबें उतरती हुई और कई चेहरों पर नकाबें चढ़ती हुई भी देखी।

उसने सोचा, चेहरे अब रह ही कहां गये हैं, सिर्फ नकाबें लगाये लोग घूमते हैं। मौके-बेमौके नकाबें बदलती है, बस और कुछ नही···।

एक और वापसी

सुबह होने में कुछ देर थी। हल्का-सा अँधेरा अभी बाकी था। चिड़िया चहचहाने लगी थी। प्रतिमा ने अपने कपड़ों को समेटा और उनकी पोटली बाँधी। फिर चुपके से इधर-उधर देखा सब सोये थे। बाहर भी कोई हलचल नहीं थी।

उसने दरवाजा भीतर समेट दिया और धीरे से दबे पाँव बाहर निकल गई।

इससे पहले उसने अपने अकेले कमरे में सास-ससुर को सबक सिखाने का फैसला कर लिया था। अपना सामान समेटने से पहले उसने सारा बिस्तर जमाकर उसमें मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी। वह कमरे में अकेली थी।

बाहर निकल आने के बाद वह निश्चिन्त हो गई। गाँव में सब सोये पड़े थे। कहीं-कहीं बैलों के गले में बँधी घण्टियों की आवाज सुनाई दे रही थी। मुर्गे बाँग देने लगे थे। उसने मुड़कर पीछे नहीं देखा। वह निपट अकेली थी।

प्रतिमा कई दिनों से अपने सास-ससुर को ऐसा सबक सिखाना चाहती थी ताकि वे जिन्दगी-भर याद रखें। यों छोटे-मोटे सबक तो कई बार सिखा चुकी थी। पर उनका कुछ असर हुआ ही नहीं था। उस दिन तो भाग्य से उसका पति भी घर नहीं था। सास-ससुर दूसरे कमरे में थे। उसके हाथ अचानक मौका लग गया।

वैसे तो उसे अँधेरे में बड़ा डर लगता। अकेली बाहर निकलती ही नहीं थी। पर आज उसमें न जाने कहाँ से इतना साहस आ गया था। वह तेज-तेज कदमों से बढ़ती ही गई। गाँव ओझल हो गया तो उसने चैन की

साँस ली।

सुबह का उजाला फैलने लगा था। हड़बड़ी मे वह अपना स्वेटर लाना भी भूल गई। हल्की-हल्की ठण्ड थी जिसने उसके हाड़-मांस कँपा दिए। काफी दूर निकल आई तो उसे दूर से ही अपना गाँव दीखने लगा। गाँव दो-तीन मील दूर पीछे छूट गया था।

वह एक पत्थर पर बैठ गई। गाँव ठीक सामने नजर आ रहा था। बिल्कुल सामने। पहाड़ में दूर की जगह भी सामने लगती है। उसने गाँव की ओर देखा—धुआँ कहीं दिखाई ही नहीं दे रहा था।

वह पीछे लौटना नहीं चाहती थी। वह उठी और फिर आगे चल दी। जान-पहचान वालो की नजरों से वह बचना चाहती थी। अब उसने सड़क छोड़कर पगडण्डी पकड़ ली।

रास्ते में वह सोचती जाती। कभी सोचती, मायके चली जाए। कभी सोचती, बहिन के घर जाए या फिर मौसी के यहाँ। सब कुछ भी नहीं कर पा रही थी। मोटर सड़क तो उसने छोड़ ही दी थी। सुबह की रेगुलर उसे सड़क पर जाती दिखाई दी।

अपने ही विचारो मे खोयी वह आगे चलती रही। रास्ते पर चलते हुए भी उसे कोई रास्ता आगे जाने का नजर नहीं आ रहा था। अब वह कहाँ जाए। ससुराल को तो वह छोड़ आई थी।

उसे याद आया। एक दिन उसने गुस्से में आकर पूरा एक किलो घी पी लिया था। घर में बस उतना ही था भी उस समय। फिर घर में सब्जी छौंकने के लिए भी कुछ नहीं बचा। तब उसके दिमाग मे खयाल आया था कि एकसाथ पूरा किलो घी पीने से कितनी ताकत होती है। उसके बाद तो कई दिनों बिस्तर पकड़े रही।

सास-ससुर खाली डिब्बा देखते ही समझ गये थे कि उनकी लाड़ली बहू का करिश्मा होगा। वे चुप रहे। उसके करिश्मों से वे तंग आ चुके थे। कभी घर मे रखा सारा दूध पी जाती तो कभी सारी बनी-बनाई सब्जी चट कर जाती। जो भी चीज घर में होती उससे बचती नहीं। अचानक कभी-कभी उसके दिमाग में झक सवार होती और न चाहते हुए भी वह कोई न कोई करिश्मा कर दिखाती। वह यह भी जानती थी कि सास-

ससुर उसका बड़ा खयाल रखते हैं। पति तो हमेशा आगे-पीछे ही घूमता रहता है।

सास-ससुर ने समझा प्रतिमा पर कोई भूत लग गया है। तन्तर-मन्तर जादू-टोने सब कराये। झाड़-फूंक करने वाले बुलाये। देवता भी नचाये। पर हुआ कुछ नहीं। उसके भीतर बैठा शैतान उसे जब-तब कुछ न कुछ करिश्मे दिखाने के लिए मजबूर कर देता। उस पर किसी बात का कोई असर ही नहीं होता। यह सब टोटके करते देख उसे हँसी भी आती।

अपने सास-ससुर के इकलौते बेटे की पत्नी थी प्रतिमा। सास-ससुर बहुत लाड़ करते। पर प्रतिमा न जाने किस हाड़-मांस की बनी थी—न तो प्यार से मानती और न गुस्से से। ज्यादा लाड़ ने उसे और बिगाड़ दिया। उसकी जबान बड़ी कटु थी। अपने आगे किसी को कुछ समझती ही नहीं। पति के समझाने का भी उस पर असर नहीं होता। एक दिन जब उसने डूब मरने की धमकी दी तो पति से भी रहा नहीं गया। उसने कहा—"जिसको मरना होता है, वे कहते नहीं हैं। जाकर चुपचाप डूब मरते हैं।"

तब से उसने मरने की धमकी देना बन्द कर दिया। उसकी जबान की कटुता बढ़ती ही गई। गांव वालों से भी भिड़ती ही रहती। दरांती कमर में ऐसे खोसकर रखती थी जैसे इलाका हाकिम की कमर में पिस्तौल हो। बात-बात में दरांती बाहर निकाल लेती।

उसने फिर से गांव की ओर देखा। धुआं अभी भी उठता नहीं दिखाई दे रहा था। लगता था वह चूक गई। उसकी मां भी कई बार आ चुकी थी लेकिन उसने अपनी बेटी को समझाने की बजाय उसके सास-ससुर को ही दोषी बताया। मां की बातों से उसे और सहारा मिला। उसके हौसले बढ़ गये।

उसके पेट में जीव पल रहा था। कई बरस से सास-ससुर पोते का मुँह देखने के लिए तरस रहे थे। वे सोचते थे, शायद सन्तान न होने से ही प्रतिमा इतनी चिड़चिड़ी हो गई है—इसलिए वे चुपचाप बर्दाश्त करते। पर दस बरस में वे पूरी तरह निराश हो चुके थे।

कई बार सास-ससुर की खुसर-पुसर भी प्रतिमा सुन चुकी थी। वे

कहते—"प्रतिमा के तो अब औलाद होने से रही, क्यों न अब परशोत्तम की दूसरी शादी कर दी जाय।"

पर जब वे दूसरी शादी की बात चला रहे थे तभी उसके पाँव भारी हो गए। उसके नखरे अब और भी बढ़ गए। सास-ससुर खून का घूंट पीकर रह जाते। पर अचानक एक दिन वह गिर पड़ी तो उसका गर्भ भी जाता रहा।

प्रतिमा फिर पत्थर पर बैठ गई। सूरज सिर पर आ गया था। वह फिर उठने को थी कि तभी दूर के गाँव के दो लोग एक गाय को ले जाते इधर से ही आ निकले। उसके साथ मरियल-सा बछड़ा भी था।

वे नजदीक आये तो प्रतिमा से पूछे बिना नहीं रहा गया—"काका, कितने की बेची है गाय।"

"गाय बेची कहाँ है, फूंकी है समझो। न तो बछड़े को दूध पीने देती है और न हमें निकालने देती है। ऐसी गाय रखकर क्या करें। भैंस होती तो किसी कसाई को दे देते पर यह गाय है।"

प्रतिमा उन्हें जाते देखती रही। उसे लगा कि वह भी तो इसी गाय की तरह है जिसका सुख किसी को नहीं है। किसी अनिष्ट की आशंका से वह डर गई।

वह उठी और उल्टे पैर पगडण्डी छोड़कर वापस सड़क की ओर मुड़ गई। उसे पहली बार लगा कि अब तक वह हमेशा गलती पर थी। पहली बार उसे अपनी गलती का अहसास हुआ। सामने गाँव के खेत दिखाई दिए। उसे लगा कि उसका घर और उसके खेत उसे वापस बुला रहे हैं।

एक्सीडेंट

●

घर में कोहराम मचा हुआ था। मूर्ति साहब अभी तक नहीं लौटे थे। उनकी पत्नी जोर-जोर से चिल्ला रही थी। छोटी बेटी उन्हें जितना ही चुप कराने की कोशिश करती उतना ही वह और जोर से चीखने लगती। आसपास की औरतें भी रोना-पीटना सुनकर वहाँ आ गई थी।

किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर माजरा क्या है। मूर्ति साहब की पत्नी बीच-बीच में 'हाय मेरी सुनी, हाय मेरी सुनी' चिल्ला रही थी। सुनीता कहीं दिखाई नहीं दे रही थी।

सुनीता की छोटी बहन ने औरतों को बताया—"दीदी कॉलेज गई थी। उसका एक्सीडेंट हो गया।"

एक्सीडेंट कहाँ हुआ, कैसे हुआ यह किसी को पता न था। सुनीता की छोटी बहन ने ही बताया—"एक पुलिस वाला आया था। वह बता गया कि दीदी का एक्सीडेंट हो गया और वह थाने में है।"

मूर्ति साहब अब तक लौटे नहीं थे। अँधेरा फैलने लगा था। मोहल्ले की औरतों का आना-जाना लगा रहा। लोगों के दफ्तरों से लौटने का वक्त हो चला था। मूर्ति देर से लौटकर आये। घर में उनकी पत्नी कोहराम मचाए थी। उनकी समझ में कुछ नहीं आया। बेटी ने उन्हें अलग ले जाकर बताया—"पापा, थाने से शाम को मोटर साईकिल में एक पुलिस का आदमी आया था। उसने आपको थाने आने के लिए कहा है, दीदी का एक्सीडेंट हो गया है और थाने में है।"

एक्सीडेंट और थाना! मूर्ति ने सोचने की कोशिश की। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। एक्सीडेंट हुआ है तो उसे अस्पताल में होना चाहिए। थाने में क्यों है! वे स्वयं अपने आपसे सवाल पूछने लगे लेकिन

कोई उत्तर हाथ नहीं आया।

बेकार में देर करना उचित न समझकर मूर्ति ने अपने दो-तीन खास-खास पड़ोसियों से अपने साथ चलने को कहा। उनमें दो गजिटेड आफिसर थे।

तीनों पड़ोसियों को साथ लेकर मूर्ति थाने पहुँचे। थानेदार कहीं गए हुए थे। ड्यूटी अफसर मिल गया। वे ड्यूटी अफसर से मिले। उसने ऊपर से नीचे तक मूर्ति साहब को देखा और बोला—"सुनीता आपकी ही लड़की है क्या?"

"जी हाँ।"

"आपका नाम खूब रोशन कर रही है।"

"आखिर हुआ क्या है साहब, बताइए तो सही!"

ड्यूटी अफसर ने कहा—"ऐसा है साहब, आप तो बहुत शरीफ आदमी लगते हैं। आपकी बिटिया एक रेस्तराँ में छः और लोगों के साथ गलत काम करते पकड़ी गई है।"

मूर्ति वहीं चक्कर खाकर बैठ गए। उनके साथ गए पड़ोसियों ने उन्हें सँभाला। पड़ोसियों के लिए यह सब सुनना बड़ी हैरत की बात थी।

थोड़ी देर में थानेदार साहब आ गए। मूर्ति उनके पास पहुँचे। थानेदार ने कहा—"आपको देखकर तो बिलकुल नहीं लगता कि आपकी लड़की ऐसी होगी। देखने मे तो बड़ी सीधी है।"

अब मूर्ति के गिड़गिड़ाने की बारी थी—"साहब, मेरी इज्जत आपके हाथ में है। लगता है उसे गलती से पकड़ लिया गया है। मेरी लड़की बड़ी सीधी है।"

"जी हाँ, सीधी है। लेकिन उसे मैंने नहीं क्राइम ब्रांच वालों ने पकड़ा है। एस० पी० साहब खुद उस दस्ते में थे।"

मूर्ति के पास कोई जवाब नहीं था। थानेदार ने फिर कहा—"इसने अपना नाम और घर का पता तक पहले गलत बताया। अगर यह तभी उन्हें बता देती कि कालेज में पढ़ती है तो एस० पी० साहब स्वय ही छोड़ देते।"

"किसी तरह से कुछ कर दीजिए साहब। मैं बदनाम हो जाऊँगा।

जवान लड़की है, सारी जिन्दगी के लिए कलंक लग जाएगा।"

"कलंक की फिक्र होती आपकी लड़की को तो इन पेशेवर लोगों के साथ नहीं जाती। इस बात को जाने दीजिए। मुझे आप पर तरस आ रहा है। आप बुजुर्ग हैं, शरीफ हैं। आपने आने में देर कर दी। केस दर्ज हो चुका है। पहले आ गए होते तो इसे छोड़ देता। अब तो जमानत करानी पड़ेगी। आप जमानत कराकर अभी ले जाइए। बाकी तो पेशेवर हैं, रात-भर यहीं बन्द रहेंगे। लेकिन हाँ, सुबह आप नौ बजे तक आ जाइए। फिर कोर्ट में जाना पड़ेगा।

और अगली सुबह मूर्ति की लड़की की जमानत हो गई। वे उसे अपने साथ घर ले आए। आते ही सुनीता सीधे अपने कमरे में घुसी और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया।

मूर्ति की पत्नी आश्चर्य में थी। कहीं कोई चोट नहीं—फिर यह कैसा एक्सीडेंट हुआ। उसने पूछा—"क्या हुआ था मेरी सुनी को ?"

"उसे क्या होना था। मेरा नाम रोशन कर दिया। अभी उसे कुछ मत कहना। अगर कहीं कुछ कर-करा लिया तो और नाम हो जायेगा हमारा।"

"आखिर हुआ क्या था ?"

"तुम्हारी लड़की बहुत सीधी है। किसी से नहीं बोलती। बस कालेज जाती है और सीधे घर चली आती है। आवारा लड़के-लड़कियों के साथ गलत काम करते पुलिस ने पकड़ लिया।"

"मेरी बेटी ऐसा कर ही नहीं सकती।"

"हाँ, मैं भी यही कहता हूँ।"—मूर्ति ने व्यंग्य से कहा।

"अब क्या होगा ?"

"होगा क्या ? कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाने पड़ेंगे। केस चलेगा। सजा भी हो सकती है। बुढ़ापे में यही देखना बाकी रह गया था।"

तब तक मोहल्ले में खबर फैल चुकी थी। शाम के अखबार में सुर्खियों में खबर पहले ही छप चुकी थी। जिसे नहीं भी पता था उसे भी पता चल गया।

मूर्ति ने दूसरे दिन सुनीता से घटना के बारे में जानने की कोशिश

की। उसने कहा—"पापा, वह लड़का रोज ही बस स्टाप पर दिखाई देता था। कल उसने मुझे छुरा दिखाकर कहा कि यदि मैं उसके साथ नहीं गई तो वह मुझे छुरा मार देगा। डरकर मैं उसके साथ उस होटल मे चली गई। वहां पहले से दो लड़कियां और तीन लड़के बैठे थे। हमारे वहां पहुँचने के दस मिनट बाद ही पुलिस ने छापा मारकर हमें पकड़ लिया।"

गहरी सांस लेकर मूर्ति बोले—"ठीक है बेटा। वकील से मिलकर बात करूंगा।"

उसके बाद मूर्ति की भागदौड़ शुरू हो गई। वकील ने जमानत भी लड़की की करा दी थी।

केस था कि कोर्ट में शुरू ही नहीं हो पा रहा था। मूर्ति परेशान। उनकी नींद हराम हो चुकी थी। रिटायरमेंट नजदीक था। वहां तो सुनीता की जल्दी से जल्दी शादी कराने के फेर मे थे और कहां यह आफत उलटे गले पड़ गई। थाने और कोर्ट के चक्कर से उनका काफी पैसा खर्च हो गया।

महीनों बाद केस शुरू हुआ। चार-पाँच महीने तक केस चलता रहा। जिस लड़के के साथ सुनीता पकड़ी गई थी उसने मूर्ति के घर के कई चक्कर लगाए। उसने मूर्ति से बात करने की कोशिश की पर मूर्ति ने मिलने से इन्कार कर दिया।

अदालत ने अन्तिम फैसला दे दिया। सुनीता को अदालत उठने तक की सजा सुनाई गई। बाकी को छः महीने से लेकर दो साल तक की सजा हो गई।

सुनीता के लिए यह एक दुखद घटना थी लेकिन मूर्ति के जीवन का यह भयंकर एक्सीडेंट था। मोहल्ले में अब वे सिर ऊँचा उठाकर भी चलने से घबराते थे। लोगों के यहां आना-जाना भी उनका बन्द हो गया। उन्हें डर था कि कहीं कोई उनसे एक्सीडेंट की घटना के बारे मे न पूछ बैठे।

नया सिलसिला

●

जानी कई दिनों से काफी उदास दिखाई दे रहा था लेकिन पूछने की हिम्मत नहीं थी। अपने आपमें ही गुमसुम। शायद ही कभी किसी ने उसे मुस्कुराते देखा हो। कभी किसी से बात भी नहीं करता। कभी कोई उससे मजाक करता तो वह फीकी हँसी हँस देता। लोग ठहाके लगाते पर वह उनके ठहाकों में शामिल नहीं होता।

जब भी देखो—अपने में ही खोया। ऐसा लगता कि वर्षों से अपनी किसी खोई हुई चीज को ढूंढ रहा हो। किसी से उसे कोई मतलब नहीं।

एक बार वह हफ्ते-भर के लिए गायब हो गया। छुट्टी पर चला गया। इतनी कम छुट्टियों पर वह कभी नहीं जाता। साल में एकाध महीने की छुट्टी लेता। बाकी छिटपुट छुट्टियाँ लेते उसे कभी किसी ने नहीं देखा। फिर तो उसका हर महीने का सिलसिला हो गया। महीने में एक-आध हफ्ते के लिए चला जाता। फिर आता तो उसका चेहरा और भी उदास दिखाई देता।

सुधीर की जानी से कुछ ज्यादा ही यारी थी। शुरू से ही उसके घर आना-जाना था।

एक दिन सुधीर से ही पूछ बैठा—"क्यों, तुम्हारा यार हर महीने कहाँ नदारद हो जाता है?"

"यह उसका सीक्रेट है।"

"उसका सीक्रेट तुम्हें मालूम न हो—ऐसा नहीं हो सकता।"

"किसी दिन तुम्हें बताऊँगा।"

"आखिर कब?"

"एक-आध हफ्ते का समय तो दे दो।"

"ठीक है, तो तै रहा।"

"दूसरे या तीसरे दिन की बात है। मैं अपने काम में व्यस्त था। तभी सुधीर आ धमका।

"चलो तुम्हे एक चीज दिखाऊँ।"

"ऐसी क्या चीज दिखा रहे हो, पता तो चले।"

वह जबर्दस्ती उठाकर ले गया। उसके बाद बाहर आ गया। बाहर एक पेड़ के नीचे जानी किसी काली-कलूटी युवती से बात करने मे व्यस्त था। उसकी गोद में एक बच्चा भी था।

"यह कौन है जानी के साथ?"

"उसकी बीवी है और कौन?"

"बीवी?" यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ।

"इसमे आश्चर्य की क्या बात है। इसका अगला हिस्सा तुम्हें इतवार को दिखाऊँगा। मैं जहाँ कहूँ—मेरे साथ चलना पड़ेगा।"

"ठीक है, मुझे कोई एतराज नही।"

"तुम्हे त्रिकोणात्मक प्रेम की ऐसी कहानी दिखाऊँगा कि मान जाओगे। बिल्कुल यथार्थ है।"

इसके बाद हम वापस आकर अपने-अपने काम में जुट गए।

इतवार को सवेरे-सवेरे सुधीर आ धमका। उसे देखते ही मुझे याद आया कि इसके साथ कही जाना है। चाय-नाश्ता कर सुधीर के साथ बाहर बस स्टाप पर आ गया।

उसके बाद हम एक अस्पताल के बाहर उतरे। मुझे पहेली बड़ी अबूझ लग रही थी। यह मुझे कहाँ ले आया। फिर भी मैं चुपचाप उसके पीछे चलता रहा। वह नर्सेज होस्टल ले गया। दरबान शायद सुधीर को जानता था।

दरबान ने उसे सलाम ठोका—"मारिया सिस्टर को बुलाना है क्या?"

"हाँ।"

हम दोनों वही बाहर के स्वागत-कक्ष मे बैठ गए। कुछ ही देर मे एक युवती वहाँ पहुँची और उसने नमस्ते की। सुधीर ने हम दोनो का परिचय

आया—नौकरी खोजने। मेरी मदर का लेटर लेकर आया था।

" इसने कहा कि वह पढ़ना चाहता है। इन्टर करके आया था। मैं इसी होस्टल में थी। मैंने इसकी गरीबी और इसका पढ़ने का मन देखकर इसका कालेज में एडमीशन करा दिया। मेरी एक रूम-मेट थी, उसके कजन उस कालेज में वार्डन थे। उनसे कहकर होस्टल में रखवा दिया। सारा खर्चा मैं देती थी। इसने ग्रेजुएशन किया, फिर पोस्ट ग्रेजुएट हो गया। पढ़ाई में बहुत अच्छा तो नहीं था पर इतना कमजोर भी नहीं। सेकेंड डिवीजन में पास हो गया।

" कभी जानी मिलने आ जाता—कभी मैं चली जाती। हमारा लव हो गया। फिर एक दिन हमने चर्च में मैरिज कर ली। यहीं मैरिड होस्टल में कमरा अलाट हो गया। मैरिज के बाद पता चला कि जानी सेक्स के मामले में नार्मल नहीं है—बिल्कुल कोल्ड। सीधा बहुत था—हमारा थिंकिंग था, ठीक हो जायेगा। औरत चाहे कितना भी प्रोग्रेसिव हो—हसबैंड को प्रोवोक नहीं कर सकता। मैरिड लाइफ ही गड़बड़ होने लगा तो मैंने अपनी तरफ से जानी को ठीक कराया। बहुत कोशिश किया लेकिन बात सँभला नहीं। कभी ठीक रहता तो कभी दो-दो वीक तक ऐसा हो जाता जैसे हम उसका वाइफ नहीं सिस्टर हूं। मैरिज के लिए तो इसी ने हमको पहले बोला था। मैरिज के बाद सब तक नहीं किया।

" इसने एक बार बोला कि अपनी मदर के पास केरल जाएगा। हमने जाने दिया—हमारे पास लीव ही नहीं था, जो था सब मैरिज में ले लिया। हमने इसको बोला—वहाँ से कोई आया ले आना। यह आया लेकर आ गया। आया का एज तो सिक्सटीन से ऊपर नहीं होगा—पर बिल्कुल काला, तारकोल की तरह। जानी को वापस आकर एक प्राइवेट कन्सर्न में नौकरी मिल गया।"

मारिया कुछ देर खामोश हो गई। दरवान चाय लेकर आ गया था। हम तीनों ही खामोश थे। मारिया ने झट से अपने आँसू पोंछ लिए। उसकी आवाज भर्रा उठी थी। मैं कहानी का ओर-छोर समझने की कोशिश कर रहा था। जानी जैसे अजीबोगरीब आदमी में आखिर मारिया ने क्या देखा था। प्यार किया, शादी की और अब तलाक···।

चाय पीकर मारिया बोली—"इसके बाद हम पर जो कुछ बीता उससे बुरा क्या हो सकता है। हम नाइट ड्यूटी में चला जाता। हमारे पीछे क्या होता—हमें क्या पता। जानी के बारे में हम सोच भी नहीं सकता था। एक नाइट को सिर में पेन हो गया और हम ड्यूटी छोड़कर आ गया। दरवाजा बन्द था, कुण्डा नहीं लगा था। हमने धीरे से हाथ लगाया तो दरवाजा खुल गया। हमारे बेडरूम की लाइट ऑन थी। वहाँ जानी और आया एकदम नंगा लेटा था। उनको हमारे आने का कुछ भी पता न लगा। हम जैसे गया था वैसे वापस आ गया—दरवाजा बन्द करके। वापस ड्यूटी पर चला गया। हम जिससे कहकर गया था उससे बोला अब हैडेक ठीक है। एक टेम्परेरी हैडेक लेकर कमरे में गया था परमानेन्ट हैडेक लेकर हास्पिटल आ गया।

"जानी अपनी वाइफ के पास बैठने तक से डरता है। उसे रैसपॉन्स नहीं देता। आया के साथ ऐसे पड़ा था जैसे वो उसका वाइफ होगा। मरि-यल कलूटी के साथ जानी का लव हो गया। मैरिज से पहले जानी ठीक था। कभी कोई रांग इन्टेनशन उसका नहीं देखा। हमने सोचा, अच्छा रहेगा।

"मार्निंग में लेट कमरे में पहुँचा। जानी अपने काम पर चला गया था। आया झाड़ू लगा रहा था। उसको क्या बोलता। जब अपना ही हसबैंड ठीक नहीं तो दूसरे को क्या बोलेगा। उस रात हमारा ऑफ था। हमने जानी से बात करने के लिए सोचा। फिर सोचा, आया का छुट्टी कर देगा। ईवनिंग में जानी आया तो हम उससे नहीं बोला। वह हमारे पीछे-पीछे घूमने लगा। हमको गुस्सा आ गया।

"हम बोला—हमारा साथ तुमको अच्छा नहीं लगता। आया हमसे स्मार्ट-हैंडसम है क्या। वह कुछ भी न बोला। हमने सोचा, अब जानी ऐसा हरकत नहीं करेगा। लेकिन वह तो पिग का माफिक निकला—गन्दी चीज पर मुँह मारता। हमारे डाँटने के बाद जानी कुछ दिन ठीक रहा। हमने सोचा, अब ठीक हो जाएगा। एक दिन हमारा डबल ड्यूटी था। दूसरा मार्निंग हम लौटकर आया तो कमरा लॉक था बाहर से। एक चाबी हमारे पास था। हमने दरवाजा खोला। जानी का अटैची गायब था। वहाँ उसका एक भी कपड़ा नहीं टँगा था। आया का जो कपड़ा था

वो भी साफ था। इसका मतलब दोनों भाग गया। उसका कोई पता नहीं चला। जानी सर्विस छोड़कर कहाँ चला गया था। हमने दोनों को बहुत खोजा। किसी का कोई खबर नहीं मिला।

"हमारा मन बहुत खराब हो गया। उस कस्बे में नया अस्पताल खुला। हमको किसी ने बताया, वहाँ जगह खाली है। हमने एप्लाई किया। मैटर्न में सलेक्शन हो गया। हम छोड़कर चला गया। यहाँ हमारा बहुत फ्रैंड है—जूली, सोनिया, नाजिया। उनसे मिलने यहाँ आ जाता है। जूली को एक बार जानी मिला। वह जूली को जानता था—उसको देखकर भाग गया। जूली ने उसका पता मालूम किया और हमको लेटर डाला।

"हम एक दिन वहाँ गया। किसी की झुग्गी में रहता था। वहाँ गया तो जानी बाहर बैठा था—हमको देखा तो भीतर भाग गया। हम भीतर जाने को था—बीच में उस ब्लैक कुतिया ने दरवाजा बन्द कर दिया। हमने दरवाजा खटखटाया। किसी ने खोला नहीं। हम वापस आ गया।

"हम अपनी सर्विस में चला गया। हमने लोअर कोर्ट में केस कर दिया। हम उस दिन जानी से मिलने गया था यह सोचकर कि उससे कहेगा—हमारा तरफ से तुम कुछ भी कर सकता है पर वह देखकर भाग गया। हमको भी गुस्सा आ गया। अपनी मदर को पैसा नहीं भेजा—जानी को पढ़ाया। उसने हमारे साथ ऐसा गड़बड़ किया। हमको धोखा दिया।"

"आपने देख लिया। अब जानी आपका नहीं हो सकता।"

"हम उसको लैसन सिखायेगा। भूल जायेगा—औरत के साथ फ्रॉड नहीं करेगा।"

मैंने सुधीर को चलने के लिए कहा। काफी देर हो चुकी थी। हम दोनों मारिया से विदा लेकर लौट आए।

रास्ते में सुधीर बोला—"अब सुन ली मेरे यार की कहानी। मैं बताता तो तुम विश्वास नहीं करते। जब गधी पर दिल आ गया तो परी क्या चीज है। तुमने मारिया को देख लिया और उस कलूटी को भी। दोनों में कितना फर्क है।"

"लगता है, मारिया के सामने हीन भावना का शिकार हो गया

राजनीति भी होने लगी। दीवान साहब ने मंदिर को ज्यादा ही खूबसूरत बना दिया। एक पुजारी रख लिया। गला उसका सधा हुआ था। अपने सधे गले का इस्तेमाल वह माइक लगाकर लोगों की नींद खराब करने के लिए करने लगा।

दीवान साहब अपने दफ्तर जाने से पहले दो-तीन चक्कर मंदिर के जरूर लगाते। उनकी भक्ति भावना कुछ ज्यादा ही बढ़ गई। मंदिर बनने के बाद से ही ऊपरी कमाई भी बढ़ने लगी थी। जिस मौसम में जो महँगा फल होता वही अपने बच्चों के लिए लाते। उनके लिए यह सब पुण्य मंदिर बनवाने से ही मिल रहा था।

कालोनी में लोगों ने अपनी-अपनी जगह घेर कर कानूनी और गैर-कानूनी तरीके से कमरे बनाने शुरू कर दिये। पूरी कालोनी स्लम बन गई। दीवान साहब ने भी अपनी छत का इस्तेमाल कर उसे एक कमरे का सैट बना दिया। एक कमरे का सैट आज के जमाने में किसी दुधारू गाय से कम नहीं। ऐसी दुधारू गाय जो कभी बाँझ नहीं होती—जिसका दूध साल-दर-साल बढ़ता ही जाता है।

कई साल पहले अचानक ही दीवान साहब से परिचय हो गया। काफी भले लगे थे—दूर के ढोल सुहावने की तरह। अक्सर आते-जाते मुलाकात हो जाती।

जिस मकान में रह रहा था उसकी हालत काफी खस्ता थी। मिट्टी झड़ रही थी। ऐसा लगता था जैसे यह कालोनी शाहजहाँ ने अपनी सर्वेन्ट्स कालोनी के रूप में बसाई थी। एक बदरंग कालोनी।

दीवान साहब से मुलाकात हुई तो उनसे कोई सैट दिलाने के लिए कहा। जब भी मुलाकात होती उन्हें याद दिला देता।

दीवान साहब एक दिन मिल गये। बोले—"मकान के लिए वाकई सीरियस हो?"

—हाँ

—ऐसा करो, सुबह घर आ जाना। एक सैट छत पर मैं बना रहा हूँ, देख लेना।

दूसरे दिन दीवान साहब का सैट देखा। काफी पसंद आ गया।

—किराये पर देने का वैसे तो इरादा नहीं। आप अपने दोस्त हैं, भाई की तरह हैं। आपकी इच्छा हो तो यहां आ जाएं।

—आखिर किराया कितना है?

—किराये की बात मत करिये। जो उचित समझो दे देना।

कई बार किराये की बात की लेकिन दीवान साहब हर बार बात टाल जाते। दो-तीन महीने में कमरा बन गया।

उनकी पत्नी बोली—भाई साहब, आप जैसा आदमी हमें जिन्दगी में कभी नहीं मिल सकता। आपको ये भाई मानते हैं। आप आएँगे तो अच्छा रहेगा फिर हमें सरकारी मकान मिलने वाला है। जब मिल जाएगा तो हमारे वाले हिस्से में आ जाना।

दोनों पति-पत्नी ने तारीफ के इतने पुल बांधे कि मैं आकाश में उड़ने लगा। तब मुझे पता नहीं था कि आकाश से जल्दी ही नीचे भी गिर जाऊंगा।

आखिर मकान बदल दिया। दीवान साहब के मकान में पहुँच गया। दीवान साहब से पहले ही दिन किराये के बारे में तय कर लेना अच्छा समझा। उनके पास पहुँचा।

—आपको भाई साहब, मैं पहले ही हाँ कर चुका था। यहाँ तो रोज कितने लोग आकर तंग करते थे। पांच सौ तक देने के लिए भी तैयार थे। आप अपने ही आदमी है, आपके लिए चार सौ है।

मैं जैसे आसमान से गिरा। अब तक जहाँ रह रहा था वहाँ दो सौ रुपया किराया दे रहा था। दीवान साहब को भी पता था। एकदम दूना किराया। वहाँ मकान खाली कर दिया था। पहले ही पता लग जाता तो दीवान साहब के छलावे का शिकार होने से बच जाता। लेकिन अब तो साँप-छछूंदर वाली हालत थी। जो भी किराया बताते देना पड़ता। और कोई रास्ता भी न था।

—ऐसा है दीवान साहब, यह बहुत ज्यादा है, इतना तो मैं दे नहीं पाऊँगा।

—ठीक है, मैं जरा अपनी श्रीमती जी से बात करके आता हूँ। उनकी जो राय होगी।

वे फुर्ती से भीतर गए और कुछ ही देर मे लौटकर आए और बोले—श्रीमती जी कह रही हैं कि आप अपने ही हैं—आपसे ज्यादा क्या लेना, आप साढे तीन सौ रुपये दे दें। वैसे मिलने के लिए पाँच सौ तक मिल ही रहे थे। पहले आपको बता चुका हूँ। यह तो दोस्ती का लिहाज है। वैसे मकान हैं ही कहाँ इस कालोनी मे। फिर एडवांस अलग देना पड़ता है। आपकी बात दूसरी है।

जब ओखली मे सिर दे दिया था तो मूसलों का प्रहार तो होना ही था।

दीवान साहब की पत्नी कुछ ज्यादा ही तेज थी। रिजर्व रहती थी सिर्फ बाहर का काम करने के लिए। दीवान साहब ही दूध लाने से लेकर बाजार का हर काम करते। वह मकान के बाहर खड़े सब्जी वाले से सब्जी लेना भी अपनी तौहीन समझती।

कुल मिलाकर चार ही घर आमने-सामने थे। इन घरों की औरतें पेटीकोट-ब्लाउज पहने वहीं सीढ़ियों के पास ही खड़ी बतियाती रहतीं। साड़ी जल्दी-जल्दी फटने के डर से नहीं पहनती थीं। जब कभी बाहर जाती तभी साड़ी पहनती। वैसे दिन भर सभी उसी रूप मे नज़र आतीं। इस रूप मे वे सब बहुत बीभत्स-सी दिखाई देतीं।

दीवान साहब की पत्नी को सीख देने की कुछ ज्यादा ही आदत थी। हमारे घर लोगों का आना-जाना लगा रहता। वह अक्सर मेरी पत्नी को सीख देती—क्यों आने देती हैं आप इतने लोगों को। इतना राशन लगता है। मुझे देखो, मैं अपनी सास को भी अपने साथ नहीं रखती। इतनी फजीहत कौन मोल ले। आप बाजार का सारा काम करती हैं, क्यों करती हैं। बबलू के पापा क्यों नहीं करते?

उसके घर के सामने थी एक तीरा। उसका पति तो कभी दिखाई नहीं दिया। उसकी अपनी मर्दानी आवाज ही हमेशा गूँजा करती। कड़कदार आवाज। लगता जैसे किसी से झगड़ रही हो।

वह कहती—मुझसे तो जाड़ों मे न बरतन साफ होते हैं न कपड़े धुलते हैं। हाथ-पैर फट जाते हैं। बच्चों के पापा ही मेरी मदद करते हैं। महरी रखती नहीं। बेकार का खर्चा कर बच्चों के पापा पर बोझ

क्यों बढ़ाऊँ। दोपहर में आते हैं, मैं सोयी रहती हूँ—बर्तन साफ करते हैं। बिना मुझे जगाए भाग जाते हैं। रात के बर्तन रात को ही साफ करते हैं। बड़ा काम है दुकान का इसलिए दोपहर में मौका मिलते ही भाग आते हैं।

मोहल्ले की औरतों की गाथाएँ सुन-सुनकर दिमाग चकराने लगता। कभी वे बिना बात लड़ने लगती। कभी मार-पीट तक की नौबत आ जाती। फिर वही महफिलों का सिलसिला सीढ़ियों पर शुरू हो जाता।

दीवान साहब ने अपना सैट इतना आलीशान बनाया कि एक महीने में ही दिल भर गया। गर्मी मे सारी छत तप जाती। भीतर बैठें तो मुश्किल—बाहर जाएँ तो और मुश्किल। बरसात मे और भी हालत खराब। भीतर पानी भर जाता। सारा सामान बरसात में खराब हो गया। किताबों पर सीलन से दीमक लग गई। टी० वी०, पखा, किताबें, बिस्तर और कोई भी चीज नही बची जिस पर बरसात की निशानी न लगी हो। काफी नुकसान हो गया था।

जब भी दीवान साहब से छत ठीक करने के लिए बात करता—हाँ, बस जल्दी ठीक करा दूँगा। आपको बड़ी परेशानी हो रही है।

ऐसा करते-करते चार-पांच महीने गुजर गये। एक दिन कहने लगे—आपसे कुछ जरूरी बात करनी थी।

उस समय जल्दी में था। दूसरे दिन मिला। बोले—भाई साहब, कई दिनों से कहने की सोच रहा था—कह नही पा रहा था। मेरी पत्नी को छत के बिना बड़ी परेशानी होती है। घुटन होती है। आप कहीं अपने लिए मकान ढूँढ लीजिए।

मैं जैसे फिर आसमान से गिरा।—ठीक है, देख लूँगा। आप भी देखिये कहीं कोई अच्छा सा मकान मिल जाए।

उनकी पत्नी को किसी से कहता सुना—ऊपर वाले खाली कर देंगे तो एक बालकोनी को बद कर कमरा बना देंगे। पाँच- छः सौ रुपये में सैट उठ जाएगा।

मेरे लिए अपने आप को भाई और दोस्त बताने वाले किसी भी व्यक्ति पर अब विश्वास करने को मन ही नही होता। पंडित जी ने कहा

भी था—दीवान साहब को नजदीक से देखोगे तो असलियत सामने आ जाएगी। जो लोग वर्षों से कालोनी में रहते थे उनमें से कुछ मेरे दोस्त भी थे। उनकी सलाह अब याद आ रही थी।

तब उनकी बातों को हँसी में उड़ा दिया था। लेकिन आज लगा कि जिस सीढ़ी के सहारे यहाँ तक पहुँचा वह सीढ़ी ही टूट गई है। इसके बाद फिर से मकान की खोज शुरू हो गई।

उसकी लड़ाई

आप शायद मेरी बात का विश्वास न करें। कोई भी नहीं करता, लेकिन यह सच है। पुलिस और अदालत ने भी न्याय न दिया। न्याय के सारे रास्ते बंद हो चुके हैं।

यह उन भद्र महिला से पहली मुलाकात थी। कई बार उन्होंने फोन पर बुलाया था। लेकिन अक्सर दोनों का ही समय मेल नहीं खाता। फोन पर वह कुछ बताती भी नहीं।

एक दिन मैंने उनसे सुबह-सुबह मिलने का फैसला कर लिया। घर से तो वह बेघर हो चुकी थी। अपने एक आफिस में ही फिलहाल वह रह रही थी। उन्हें बुलाना पड़ा। दूसरे आफिस से आने में उन्हें कुछ देर हो गई। बहरहाल प्रतीक्षा करता रहा।

काफी भारी-भरकम महिला थी श्रीमती रजनी। आते ही नाश्ते का आर्डर दे डाला। ना-ना करते-करते उनका नौकर जा चुका था।

—आपने अच्छा किया जो चले आए। मैं पिछले दो साल से बहुत परेशान हूँ। मकान मालिक ने घर से निकाल दिया। सारे सामान पर कब्जा कर लिया—जिन कपड़ों में थी उन्हीं में निकलना पड़ा। पति पर एक दूसरी औरत ने कब्जा कर लिया है। एक ऐसी औरत ने जो शादी-शुदा है और उसका पति भी इस साजिश में हिस्सेदार है। जो अपने आप को मेरे पति का दामाद बताता है।

—आखिर यह माजरा क्या है मिसेज रजनी।

—माजरा ही तो बड़ा अजब है। सब जगह से हार चुकी हूँ। मेरे असली दस्तावेज तक नकली सिद्ध किए जा चुके हैं। नीचे से ऊपर तक सैकड़ों दरवाजे खटखटा चुकी हूँ और हालत यह है कि मैं दर-दर की

ठोकरें खा रही हूँ। कहीं से न्याय नहीं मिला।

बीस साल पहले हमने अंतर्जातीय विवाह किया था। मेरे पति अक्सर व्यापार के सिलसिले में विदेशों के दौरे पर रहते आए हैं। पति की गैरमौजूदगी में मकान मालिक और उनके बेटों ने मेरे साथ कई बार दुर्व्यवहार किया, छेड़खानी की और मुझ पर कई बार हमला किया। उनका इरादा क्या था यह वही जानें। थाना सिर्फ 50 गज की दूरी पर था। पुलिस में कई बार शिकायत की गई लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। आखिर निकलता भी कैसे—मकान मालिक के रिश्तेदार इलाके के एस० पी० जो थे। मकान मालिक और उसके बेटे तस्करी के आरोप में कई बार पकड़े जा चुके थे, वे सजायाफ्ता मुजरिम थे। पुलिस के उच्चाधिकारियों और मन्त्रियों से शिकायत करती रही। पर हुआ कुछ भी नहीं। मुझे लगातार तंग किया जाता रहा। यहाँ तक कि जब भी थाने में शिकायत करने जाती तो पुलिस तक मेरे साथ दुर्व्यवहार करती। थाने में एक बेकसूर महिला के साथ इससे भी बुरा और क्या व्यवहार हो सकता है। जब थानों में ही न्याय के लिए जाने वाली महिलाओं पर अन्याय हो रहा हो तो फिर न्याय कहाँ से मिलेगा। वर्दी के नीचे छिपे भेड़िये मुझे नोचना-खसोटना चाहते थे।

मेरी गैरमौजूदगी में कई बार घर का ताला तोड़ा गया। कीमती सामान गायब हुआ। थाने में शिकायत की और पहले की तरह कोई कार्रवाई नहीं हुई। पुलिस ने मेरे और मेरे पति के शिकायत करने के बाद भी कभी जाँच करने तक की आवश्यकता नहीं समझी। शिकायत भी बड़ी मुश्किल से दर्ज होती। कई बार तो बिजली का करंट तक मेरे घर में प्रवाहित किया गया। पिछले चार-पाँच वर्षों में कई दर्जन शिकायतें आप थाने में दर्ज देख सकते हैं।

एक दिन तो हद हो गई। पुलिस को साथ लेकर मकान मालिक ने मेरा सारा सामान लूट लिया। मेरा बहुमूल्य सामान, दुर्लभ पुस्तकें और दस्तावेज सब कुछ अपने कब्जे में ले लिये। मेरे पास कुछ भी नहीं बचा। सिर्फ बचे तो शरीर पर पहने हुए कपड़े। पति बाहर थे। बच्चे भी अपने ननिहाल अहमदाबाद गए थे। घर में एक अकेली मैं। जब गुंडागर्दी

करने वालों को पुलिस संरक्षण दे रही हो तो मैं अकेली क्या कर सकती थी। बचाने के लिए, न्याय के लिए गुहार किससे करती। हमारी वर्षों की मेहनत मिट्टी में मिला दी गई। मेरी समझ में यह बात आज तक नहीं आई है कि बिना अदालत के आदेश के पुलिस कैसे किसी से जबरन मकान खाली कराने दे सकती है। पर हुआ यही—जबरन मकान खाली कराने के साथ सब कुछ सामान लूट भी लिया। मैं सड़क पर आ गई। आखिर औरत थी न—बहुत बुरी तरह टूट गई।

इसके बाद फिर थाने गई। यह जानते हुए भी कि मेरी शिकायत का कोई नतीजा नहीं निकलेगा। शिकायत दर्ज नहीं की गई। मुझे एक कमरे में बिठा दिया गया। वहाँ कई पुलिस कर्मचारी पहुँच गए। सबने मेरे साथ अश्लील हरकतें कीं—मेरे चुम्बन लिये। स्तन नोच लिये। किसी तरह से मैं वहाँ से जान बचाकर बदहवास भागी।

कई दिनों बाद मेरे पति विदेश से लौटकर आए। हवाई अड्डे से हम सीधा थाने पहुँचे और रिपोर्ट दर्ज कराई। इसके बाद अपने किसी पारिवारिक मित्र के यहाँ रहने के लिए चले गए। और कोई रास्ता भी न था।

इसके बाद अचानक मेरे पति की तबीयत खराब हो गई। वे चल-फिर भी नहीं सकते थे। इसी बीच अचानक कुछ लोग मेरे पति के शुभ-चिंतक बनकर सामने आए और उन्हें अस्पताल में दाखिल करने के लिए ले गए। पति का सारा सामान भी वे अपने साथ ले गए। आश्चर्य तो इस बात का है कि वे गाड़ी अस्पताल न ले लाकर अपने घर ले गए। मेरे पति का सारा सामान उन्होंने अपने घर पर उतार लिया और उसके बाद मेरे पति को अस्पताल में दाखिल करा दिया। अस्पताल में मेरे पति का घर का पता भी उन्होंने अपना ही लिखवाया। दूसरे दिन मुझे अस्पताल में डाक्टरों ने अपने पति से मिलने से रोक दिया। मेरे पति के शुभचिन्तकों ने मेरे बारे में पता नहीं क्या-क्या अफवाहें फैलाई थीं। मैं अपने ही बीमार पति से मिलने से रोक दी गई।

मेरे पति के पास एक और युवती बैठी थी। वही उनकी देखभाल के लिए तैनात की गई थी। इसकी शिकायत करने जब थाने गई तो पुलिस

ने मुझे बिठाए रखा। मेरे साथ दुर्व्यवहार किया। आधी रात को मुझे छोड़ा गया।

मेरे पति के इलाज में इतनी अधिक गोपनीयता बरती गई कि कुछ भी पता नही चल सका। उनका इलाज ही कुछ अजीबोगरीब ढंग से किया गया—यानी कि बीमारी कुछ थी, दवा और कुछ दी गई। यह सब कुछ पूर्वनियोजित साजिश करके किया जाता रहा। इन सब से अनजान थी।

एक दिन अचानक अस्पताल से ही मेरे पति का अपहरण कर लिया गया। मुझे कुछ भी पता न था कि मेरे पति कहाँ हैं, किस हालत में हैं। इस बीच अचानक पता चला कि मेरे पति किसी मानसिक बीमारी से ग्रस्त हैं। यह सब मेरे पति के लगातार मानसिक यातना, गलत दवा और नशीले द्रव्य देने का नतीजा था।

मेरे पति उन्ही लोगों के चंगुल मे थे जो उनके शुभचिन्तक बने थे और उनकी सरगना थी वही कुख्यात युवती—जो साक्षात एक विषकन्या है। जिसका काम ही बड़े लोगों के बिस्तर गर्म करना और लड़कियाँ सप्लाई करना है। उसी के प्रभाव के कारण मेरी शिकायतों पर कोई कार्रवाई नही हुई। मैंने अपने पति से मिलने की कई बार कोशिश की—फोन पर बात करने की कोशिश की। अपने भाई को भेजा। लेकिन उनसे मिलने न दिया गया। फोन पर भी बात नही करने दी गई।

एक दिन मैं अपने पति से मिलने चली गई। मुझसे रहा नही गया। वहाँ पहुँचने के बाद मुझे अपने पति से मिलने नही दिया गया। मुझ पर हमला किया गया, मेरे कपड़े फाड़ दिए, इसके बाद दो लोग मेरे गुप्तांगों के साथ खेलते रहे। बाद में मेरे सिर पर प्रहार कर दिया। मैं बेहोश हो गई। होश में आने पर मैंने स्वयं को अस्पताल में पाया। मैं अधनंगी हालत में पडी थी, मेरे जिस्म का अधिकांश हिस्सा बाहर झांक रहा था। कपडे खून से सने थे। मेरा सिर चकरा गया और मैं एक बार फिर बेहोश हो गई।

वहाँ मेरे बिस्तर के पास एक सिपाही तैनात था। जिसने जबर्दस्ती कुछ सादे कागजों पर मेरा अंगूठा लगाया। उसके बाद फिर उठाकर

मुझे थाने ले जाया गया। वहाँ भी मुझे न्याय न मिला। उल्टे मेरे बाल जोरों से पकड़कर खींचे गए। मुझ पर फिर बेहोशी छा गई।

कई घंटे बाद मुझे होश आया। मैंने अपने कुछ मित्रों को फोन करना चाहा—ऐसा नहीं करने दिया गया। इस दौरान न मुझे दवा दी गई, न खाना। यहाँ तक कि पीने के लिए पानी भी नहीं दिया गया। मैं दर्द से परेशान थी। भूख और प्यास से तड़प रही थी। उल्टे मुझ पर ही जबरन घुसपैठ का केस दर्ज किया गया।

इन सब लोगों ने जालसाजी करके हमारी सारी सम्पत्ति हड़प ली। इधर-उधर जो पैसा जमा था वह निकाल लिया। मेरे पति के जाली हस्ताक्षर कर इन लोगों ने लाखों रुपये डकार लिये। मकान मालिक और ये शुभचिन्तक एक हो गए। मैं अपने ही पति से मिलने के लिए तरस गई। मेरे पति की हालत इतनी खराब हो गई कि वे उन लोगों के डर के कारण उनके कहे अनुसार चलने गए। मानसिक और शारीरिक यातनाओं ने उन्हें जर्जर बना दिया।

यही नहीं, इसके बाद मेरा अपहरण और हत्या करने के लिए कई बार गुंडे भेजे गए। उस विषकन्या ने पति के जाली हस्ताक्षरों के जरिये स्वयं को उनकी पुत्री घोषित कर दिया। इससे भी बड़ी जालसाजी और क्या हो सकती है कि जिससे दूर का भी कोई रिश्ता न हो वह पुत्री बन जाय! कानून तो अंधा है न। मेरे वास्तविक दस्तावेज़ों और दावों को अनदेखा कर दिया। जाली दस्तावेज़ों को असली करार दिया गया। पुलिस भी तो आखिर उनका ही साथ दे रही थी। उसने सारे मामले को ही इतना पेचीदा बना दिया कि मैं असहाय हो गई।

हालत यह हो गई कि मेरे पति मुझसे नहीं मिलना चाहते। इतना बड़ा झूठ पुलिस ने गढ़ लिया। एक बार भी मुझे मेरे पति से नहीं मिलने दिया गया। अदालत के जो भी फैसले मेरे हक में हुए उन्हें भी पुलिस ने नहीं माना।

मैं घंटे भर तक श्रीमती रजनी की आपबीती सुनता रहा। वे बोलती रहीं। बीच-बीच में उनका गला भर्रा उठता। थोड़ी देर चुप हो जाती। फिर बोलने लगती।

—सचमुच आप पर बहुत ज्यादती हुई है। ताज्जुब है कि मंत्री और उच्च अधिकारी भी चुप्पी साधे बैठे हैं।

—मैं व्यक्तिगत रूप से हर एक को मिल चुकी हूँ। तार भेजे, रजिस्टर्ड पत्र भेजे। हालात सुधारने की बजाय बिगड़ते गए। पुलिस का जुल्म बढ़ता रहा। पुलिस अपराधियों को ही संरक्षण देती आ रही है।

—इस मामले में मैं मदद भी क्या कर सकता हूँ। फिर भी कोशिश करूँगा।

—हाँ देखिये। कुछ भी कर सकते हो तो जरूर करें। मैं सब जगह से निराश हो चुकी हूँ। भगवान पर विश्वास करती थी, अब वह भी जाता रहा। भगवान अगर कहीं होता तो मेरी मदद करता। मैं बराबर लड़ रही हूँ—अंतिम दम तक लड़ती रहूँगी। यह मैं जानती हूँ कि इस व्यवस्था में मुझे न्याय नहीं मिल सकता—फिर भी न्याय मिलने की आशा अभी तक नहीं छोड़ी है। छोटा-मोटा काम शुरू किया है। बच्चों को अपने साथ रख नहीं सकती। मेरा सारा समय तो दौड़-भाग में ही बीत जाता है। न खाने का होश रहता है और न पहनने का।

इतनी देर में नौकर ने नाश्ते का सामान लाकर मेज पर रख दिया था। जल्दी-जल्दी कॉफी पीकर उठा।

तमाम दिन मेरे दिलो-दिमाग में मिसेज रजनी का मामला छाया रहा। धीरे-धीरे मैं इस घटना को भूल गया। कई दिनों बाद फिर एक दिन फोन आया—आपने कुछ किया।

—सॉरी, अभी तक कुछ नहीं कर पाया।

—मुझे आपसे बड़ी उम्मीद है।

लेकिन एक अर्सा बीत जाने के बाद भी मैं उनकी कोई मदद नहीं कर पाया हूँ। समझ में भी नहीं आता कि आखिर क्या मदद करूँ। उनकी अपनी लड़ाई में कुछ भी मदद कर पाने में मैं खुद को असहाय समझ रहा हूँ।

बीती यादें

अँधेरा कितनी जल्दी-जल्दी इस घाटी में सिमट आता है। जाड़े के दिन बीतते देर नहीं लगती। यह घाटी तो लगता है जाड़ों के लिए ही बनी है। चारों ओर कोहरा और अजीब-सी खामोशी।

अँधेरा तो सिमटने का ही इन्तजार करता है। ऐसा सोचते ही कान्ता अपने आप में सिमट गई। वह सोचने लगी—मशीन की तरह लगातार काम मे जुटे रहना ही पहाड़ की औरतों के भाग्य में है। पता नहीं क्यों कभी-कभी उसे इस 'भाग्य' शब्द से चिढ़ होने लगती है। सुबह के अँधेरे से लेकर रात के अँधेरे तक काम का न टूटने वाला सिलसिला—न खाने-पीने की सुध और न आराम की परवाह।

काम करने से जोड़-जोड़ दुख जाता है पर फिर भी आराम नसीब मे नहीं। थकान से बोझिल पलकें बार-बार झपकने लगती हैं लेकिन फिर भी मजबूरी में उठना ही पड़ता है।

कान्ता अभी-अभी खेत से लौटी थी और अब उसे आकर चूल्हे का काम सँभालना पड़ा। जिन्दगी यों ही चलती रहती है। कुएँ के मेढ़क की तरह अपने में ही खोए रहने की विवशता झेलना भी बड़ा अजीब लगता है। मोटर कैसी होती है—इसका कुतूहल भी तो अभी कुछ वर्ष पहले ही खत्म हो चुका था।

हर पाँच साल मे मेला-सा लगता है—महीने-भर मे चारों और रंगीनी और उसके बाद सब खत्म। गाँव से गए लोग गर्मियों मे आते हैं तो गाँव की रौनक बढ़ जाती है और उनके जाते ही पूरा गाँव उजाड़-सा लगने लगता है। अभी रसोई का सारा काम पड़ा था। बाहर तारे तक टिमटिमाने लगे हैं। कान्ता ने चूल्हे में आग जलाई। चूल्हे पर उसने

पानी चढ़ाया ही था कि तभी आग भुरभुरा उठी। वह उस भुरभुराहट को अजीब बेबस निगाहों से देखने लगी। उसका सारा खून जैसे निचुड़ गया हो। उसके सारे बदन में झुरझुरी-सी फैल गई। आग की भुरभुराहट के साथ ही उसे अपने पति की याद हो आई।

आग के भुरभुराते रहने में ही जीवन की सारी उम्मीदें लगी रहती हैं—आग की भुरभुराहट पति की याद के साथ अनचाहे ही जुड़ जाती है, तो लगता है कि उसे ढेर सारा सुख मिल गया है। यह सोचते ही उसकी आँखें भर आईं।

उसका पति चन्दन। उसे एक वर्ष से अधिक हो गया पर उसने अपनी कान्ता की सुध नहीं ली। जाते वक्त वायदा कर गया था कि इस बार जाड़ों में जरूर साथ ले जाऊँगा।

कान्ता का मन कड़वा हो गया। पिछले साल इन्हीं दिनों चन्दन घर आया था। उसे पता नहीं था, चन्दन घर आने वाला है। वह अपने मायके गई थी। हफ्ते-भर बाद अचानक चन्दन आ गया था। उसके छोटे भाई ने उसे बताया तो वह अन्दर ही अन्दर चन्दन से मिलने के लिए छटपटाने लगी थी।

"दीदी, जीजाजी घर आ गए हैं। यहाँ शायद दो-तीन दिन में आएँगे।" उसके छोटे भाई ने कहा।

"तुझे किसने बताया ?" उसने उत्सुकता से पूछा ही था कि न जाने क्यों झिड़कते हुए कहने लगी—"अपने आप जो जी में आता है कह देता है, मैंने तुझसे पूछा था ?" यह कहते हुए उसे अच्छा नहीं लगा था पर लिहाज जो करना था।

वह जैसे किसी गहरे सागर में डूब गई थी। वह स्मृतियों में डूबती-उतराती चली गई। तभी अचानक धुआँ उसकी आँखों में भर गया। चौंककर उसने चूल्हे की ओर देखा। चूल्हा पता नहीं कब आग की आँच से ठंडा हो गया था।

उसने दोबारा लकड़ियाँ ठीक करके आग जलाई। उसे सास का डर लगने लगा। आज बहुत देर हो गई थी, और दिनों तो खाने का समय हो चुका होता। पड़ोस वाले बर्तन मलने के लिए आँगन में ले आए थे।

वह आज चन्दन के बारे मे ही सोचती चली जाना चाहती थी। पर अपनी विवशता से ही वह झुंझला उठी थी। उसने सब्जी चढ़ा दी और आटा गूंधने लगी।

फिर पता नहीं वह कहाँ खो गई थी। वह सोचने लगी थी—चन्दन घर होता तो उसका काम बड़ी तेजी से निबट चुका होता। पर अब तो हाथ भी साथ न देने की कसमें खा चुके थे। चन्दन इस वक्त रसोई के कितने ही चक्कर लगा चुका होता—कभी पानी पीने के बहाने और कभी किसी बहाने। कान्ता के साथ छेड़खानी करके बाहर चला जाता। कान्ता जितना झुंझलाती वह उतना ही तंग करने लग जाता। वह उसके सामने आकर खड़ा हो जाता और एकटक उसकी ओर देखता रहता।

"यहाँ क्या कर रहे हो? बाहर कमरे मे जाकर क्यों नहीं बैठते?" वह कहती।

"अपनी कान्ता के बिना रहा न गया तो देखने आ गया। कहती हो तो चला जाता हूँ। देखो, एक बार मेरी ओर देख लो—आग की लपटों से तुम्हारा चेहरा दमक रहा है, तुम्हारे गाल लाल हो गए हैं। मन करता है···" और कहते-कहते चन्दन उसके चेहरे की तरफ झुक आता।

"यहाँ से बाहर क्यों नहीं चले जाते। सारी रात तुम्हारी पड़ी है। यह भी कोई समय है क्या? बाहर से अभी कोई आ जाए तो?" कान्ता झुंझलाते हुए कहती। उसके मन मे डर भी रहता कि अचानक बाहर से कोई आ गया तो वह शर्म से डूब भी नहीं सकेगी।

चन्दन बाहर चला जाता और माँ से कहता, "माँ, चलो खाना बन गया है, मुझे भूख लग रही है जोरों से।"

"खाना बन गया है तो वहीं खा ले न! मुझे क्यों बार-बार उठाता है।" माँ का उत्तर होता। चन्दन को मनचाही छूट मिल जाती। वह यही चाहता। वह तुरन्त फिर लौटकर रसोई में पहुँच जाता। आराम से बैठकर खाने लगता और बीच-बीच में कान्ता के साथ छेड़छाड़ करने का मौका निकालता रहता।

"सुनो, कान्ता मेरी, जरा मेरी तरफ तो देखो···" वह धीरे से

फुसफुसाते हुए कहता।

"छि:, तंग क्यों करते हो। खाना खाकर बाहर जाओ। इतनी देर से मेरी ओर ही देखे जा रहे हो।" कान्ता मन ही मन खुश होती पर बाहरी गुस्सा दिखाते हुए कहती।

"खाना ही तो खा रहा हूँ। तुम्हें देखकर मेरी तो सारी भूख ही भाग जाती है।" चन्दन शरारत से मुस्कुराने लगता।

परछाईं टूट गई थी। आग फिर बुझने लगी थी। उसने फूंककर फिर जलाई। तभी आग दोबारा भुरभुराने लगी। कान्ता के सामने फिर स्मृतियाँ कौंधने लगी।

वह मायके में थी। चन्दन उसे लेने गया था। सांझ का झुटपुटा फैलने लगा। वह पनघट से पानी लेकर लौटी तो सामने आँगन में चन्दन को बैठा पाया। उसकी आँखें चन्दन से मिलीं तो चन्दन के होठों पर मुस्कान तैर गई थी। चन्दन ने पास खड़े उसके छोटे भाई को चूम लिया था। कान्ता मन ही मन मुस्कुराती हुई अन्दर चली गई थी।

कान्ता जैसे सपना देख रही थी। रह-रहकर चन्दन की याद उसे बुरी तरह कचोटने लगी थी। चन्दन की तस्वीर उसकी आँखों में तिरने लगी तो झट से उसके आंसू आ गए। उसे देखकर चन्दन का मन चंचल हो उठता। जब भी कान्ता को सामने देखता तो जोर से आवाज देने लग जाता। कान्ता संकोच से भर जाती। वह सोचती, लोग भी क्या कहेंगे। वह लोगों के सामने अपरिचित की तरह चन्दन से बोलना भी नहीं चाहती। गाँव के लोग पति-पत्नी के भी इतना खुलकर बोलने में बदनामी करते हैं।

एक बार गाँव के किसी बुजुर्ग ने कहा था, "आज के जमाने से तो हमारा जमाना अच्छा था। आज तो ब्याह हुआ नहीं कि बोलना शुरू—कुछ भी लाज-शरम नहीं। हमारे जमाने में चार-चार बच्चे हो जाते थे। पर घरवाली का चेहरा तक नहीं देख पाते थे।"

और तभी चन्दन ने शरारत से जवाब दिया, "तो ताऊजी, वह बच्चे चले गए थे

चन्दन को वह जोर से न बोलने के लिए कहती। चन्दन तो किसी की परवाह ही नहीं करता था। वह गुस्से में कहने लगता, "अगर अपनी बीवी से बतियाने में तुम्हारे गाँव वाले बदनाम करते है तो करें! उनकी परवाह करे मेरी जूती। मैं तो चाहता हूँ कि इन लोगों के कलेजे पर खूब साँप लोटें। मैं तो तुमसे बोलूँगा।" चन्दन जोर-जोर से आवाज देने लगता।

आग फिर भुरभुरा रही थी। कान्ता के सोचने का सिलसिला टूट ही नहीं पा रहा था। सब्जी जलने की गन्ध से वह सपने से लौट आई थी। अभी तक पता नहीं कहाँ खोई थी। सब ज्यों का त्यों पड़ा हुआ था। वह भूल गई थी कि रसोई में बैठी है। बाहर कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। पर वह पसीने से नहा उठी। माथे का पसीना उसने पोंछा। उसकी आँखें नम हो गईं। उसने उठकर एक लोटा पानी पीया।

कल ही तो चन्दन का पत्र आया है। पत्र में भी शरारत करना नहीं भूलता। बहुत दिनों बाद पत्र भेजा, वह तो मारे चिन्ता के सूख ही गई थी। चन्दन ने अपने पत्र में लिखा था, "जाड़े के दिन हैं, दिन तो कट जाते हैं पर रातें बड़ी लम्बी लगती है। रात भर अपने में सिमटा पड़ा रहता हूँ। बिस्तर पर करवटें बदलते-बदलते रात बीत जाती है। तुम साथ होती तो रात इतनी लम्बी नहीं लगती। सीने से तकिया लगाए तुम्हारी याद बहुत आती है। सच, विश्वास मानोगी, दो तकियों का कचूमर निकाल दिया है।"

कान्ता को महसूस हुआ, चन्दन भुरभुराती हुई आग बनकर उसे पुकार रहा है।

चन्दन जब यहाँ रहता तो अक्सर रात को सोने का बहाना करके लेटा रहता। वह रसोई का काम खत्म करके पहुँचती तो देखती, चन्दन सो गया है। ट्रांजिस्टर लगा हुआ है। वह ज्यों ही उसके करीब जाकर देखती, चन्दन उसे झुकते हुए देखकर तुरन्त अपनी ओर खींच लेता।

"अच्छा, तो सोए नहीं थे?" कान्ता मुस्कुराते हुए पूछती।

"तुम्हारे बिना नींद कभी आती ही नहीं। मैं यहाँ इन्तजार करते थक जाता हूँ। एक तुम हो कि काम जल्दी खत्म करके नहीं आती। मैं कब से तुम्हारे बिना परेशान हो रहा हूँ।" उसे अपनी बाँहों में खींचते हुए

चन्दन कहता।

सारी रात इसी तरह बीत जाती। चन्दन उसे अपनी बाँहों में भींचे हुए सो जाता। वह दूसरी ओर मुँह करके सोना चाहती तो चन्दन जाग जाता। वह कहता, "दूसरी तरफ मुँह करके मत सोया करो। मुझे नींद नहीं आती।" तब वह चन्दन की बाँहों में सो जाती।

आग अभी तक भुरभुरा रही थी। कान्ता रोना चाहती थी पर रो भी नहीं पा रही थी। अजीब घुटन से वह बेचैन हो उठी।

कान्ता को चन्दन के साथ बिताई हुई हर घड़ी याद आ रही थी। यह याद बुरी तरह उसे कचोट रही थी। आज कान्ता का मन हुआ कि चन्दन आ जाता तो कितना अच्छा था···

तभी रोटी जलने की तीखी गन्ध फैल गई थी। रोटी जलने की गन्ध से उसकी सास अन्दर आ गई थी। उन्होंने कान्ता के सिर पर हाथ रखते हुए पूछा, "आज क्या हो गया है तुम्हें? तबीयत तो खराब नहीं है? जाओ आराम करो!"

कान्ता ने धीरे से कहा, "बड़ी देर से सिर में दर्द हो रहा था। अब ठीक हो गया।"

इतना कहकर वह रोटी बनाने में लग गई। उसे अपने उत्तर से खुद सन्तोष नहीं हुआ था। पर इसके अलावा वह उत्तर भी क्या देती।

उसने खिड़की खोली। हवा का एक तीखा झोंका अन्दर आया और वह सिहर उठी। खिड़की से उसने बाहर देखा—पड़ोस में सब लोग सो गए थे। रह-रह कर कुत्तों के भौंकने का स्वर सुनाई दे रहा था।

उसने आग ठीक की। चन्दन का मुस्कुराता हुआ चेहरा उसकी आँखों में फिर से तैर गया।

●●●



देवेन्द्र उपाध्याय

जन्म : खुमाड़, सल्ट (अल्मोड़ा) में फरवरी १९४५। १९६५ से नियमित लेखन। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

पेशा : पत्रकारिता।

संपादन : 'परिभाषा' व 'अनास्था' अनियतकालिक, कूर्मांचल (त्रैमासिक) और 'लोकभूमि' साप्ताहिक।

प्रकाशित पुस्तकें : 'सदर्भ' व 'अजनबी शहर में' (काव्य-संग्रह); 'शहर में आखिरी दिन' व 'एक और वापसी' (कहानी-संग्रह); 'कई एक चेहरे' (उपन्यास), 'नयी रोशनी', 'कोई न रहे बेकार' (लघु उपन्यास), 'हरियाली से खुशहाली